■ ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रन्थमाला हिन्दी-ग्रन्थाङ्क—१०८

भूमिजा

[रंगमञ्च नाटक]

•

सर्वदानन्द

भारतीय ज्ञानपीठ • काशी

एको रसः करुण एव निमित्तभेदात्
भिन्नः पृथक् पृथगिव श्रयते विवर्त्तान् ।
आवर्त्तबुद्बुदतरङ्गमयान् विकारान्
अम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समस्तम् ॥

निवेदन

'भूमिजा' की कथावस्तु और इसके रचना-शिल्पके विषयमें एकान्त मौलिकताका आग्रह मेरा उतना नही है जितना रगमञ्चीयताका। वाल्मीकि, भवभूति और स्वर्गीय द्विजेन्द्रलाल रायने मेरा काम बहुत सरल कर दिया था। वाल्मीकीय रामायण, उत्तररामचरित और सीतासे भूमिजाके प्रणयनमे मुझे पर्याप्त प्रेरणाएँ मिली है। जहाँ जो प्रसग, जो विचार, नाटकीयताकी दृष्टिसे जो पात्र और परिस्थिति रुचे, जो घटनाएँ रसोद्रेकमें सहायिका लगीं, मैंने मुक्त भावसे अपने रंगमञ्चके साँचेमे उन्हें ढाल लिया है। समाजके स्तर-स्तरकी शिरा-उपशिराओंमे प्रवाहित राम-सीताकी कथा कल्पनाओंकी अपेक्षा नहीं रखती। इतिहासके पृष्ठोंमें रामायणकाल भूला-बिसरा नहीं बना है, न कभी बननेकी आशका है। मेरे हाथ बँधे थे, कल्पनाएँ मुक्त नहीं थीं। दो-सवा दो घटोंमें मुझे कतिपय समर्थ घटनाओं द्वारा वह सब कुछ कहना और दिखाना था जो अभीप्सित था।

संस्कृत नाटकोंकी परम्परामे ट्रैजिडीके लिए स्थान नही है। भवभूतिने उत्तररामचरितके अन्तमे राम और सीताको प्रत्यक्ष लाकर एक प्रकारकी निःस्संग तटस्थता ग्रहण कर ली है। मुझे यह रुचा नहीं। नारीका आत्मसम्मान और गौरव इस मिलनसे महत् नहीं होता। रामका एकान्त पश्चात्ताप और कष्टभोग अपनेमें स्वाभाविक है किन्तु सीताकी इस आत्मग्लानिके प्रति उदासीनता, दो बारके कटु अनुभवोंके बाद, दिखाये बिना मेरी

समझसे करुणा-निष्पत्ति सम्पूर्ण नही होती। कञ्चुकी और दुर्मुखके चरित्र भी इसीलिए मैंने उभारे है। लक्ष्मण और उर्मिलाके प्रसगका यही प्रयोजन है।

पाण्डुलिपि और अभिनय देखनेके बाद कुछ लोगोका यह मत था कि सीताका चरित्र रामसे अपेक्षाकृत ऊँचा उठ गया है, राम उतनी श्रद्धाके पात्र नहीं लगते जितनी स्वभावतया हम उन्हे देते आये है। मैं समझता हूँ यह दोषकी बात नही है। बालिका वध, तपस्वी शम्बूककी हत्या, विभीषणसे भ्रातृ-द्रोह कराना, निष्कलंक सीताके प्रति रामके व्यवहार और ऐसे ही अन्य कितने ही छोटे बड़े कार्य सामाजिक न्याय और व्यक्तिगत मर्यादाकी सीमामे—मर्यादापुरुषोत्तमकी संज्ञा पानेवालेके लिए—नहीं आते। राम स्वयं इस बातका अनुभव करते है। प्रस्तुत नाटकमें, ऐतिहासिक तथ्योके आधारपर, मुझे सीताके प्रति दर्शकोंकी करुणा जगानी थी और अभिनयके समय उनकी आँखोसे बहे हुए आँसू प्रमाण है कि मै बहुत अंशों तक इस उद्देश्यमें सफल रहा। वाल्मीकिने भी नारी-निर्यातनका सजीव इतिहास लिखकर यही उद्देश्य पूरा किया है।

रंगमञ्च सामाजिकताका एक अनिवार्य परिचय है। रंगमञ्चकी सेवाको मै मनोरजन नहीं, अपने जीवनका आत्मदान मानता हूँ और अभिनयको कलाका उत्कृष्ट रूप। कवि शब्दोसे खेलता है, गायक स्वरोसे, चित्रकार तूलिकासे, नृत्यकार भाव-भंगिमासे। अभिनेता इन सबका समन्वय करता है। साधनासे उसे बल मिलता है। तपस्यासे अपनी कलाकी चरम ऊँचाईपर पहुँचकर वह अपनी अनुभूतिमे जिस सत्यका साक्षात्कार करता है वह अनिर्वचनीय है। वस्तुतः किसी भी कलाकी परमसिद्धिके लिए यह एकान्त तल्लीनता अपेक्षित होती है। दुर्भाग्यसे, चलचित्रोके

सस्ते व्यावसायिक रूपका अनुकरण करनेवाले ऐसे रगमञ्चीय कलाकारोंका भी परिचय मुझे मिला है जो दो-दो तीन-तीन नाटकोमे एक साथ अभिनय करते है और साधनापूर्ण परिश्रम-जन्य पूर्वाभ्यासको व्यर्थ समझते है। रेडियोने इस विषयमे और भी अनिष्ट किया है। वहाँ दो-तीन पूर्वाभ्यासमे नाटक होता है और तत्काल मिलनेवाले पैसोका प्रलोभन प्रमुख होता है। कला-कारोंके लिए पैसोकी आवश्यकताका महत्त्व स्वीकार करते हुए भी मै रंगमञ्चीय अभिनयको इतना सहज माननेकी प्रवृत्तिको गर्हित मानता हूँ। यह कलाकी सेवा नही मखौल है। इस प्रकार किसी भी भूमिकाके साथ उचित न्याय नही हो सकता।

एक बात और। उत्तररामचरितके अन्तमे अप्सराओं द्वारा वाल्मीकिने राम-कथाका अभिनय प्रस्तुत किया है। राम स्वयं दर्शकके रूपमे उपस्थित है। उस समय भी समाज था, नैतिकता और व्यवहारकी मर्यादाएँ थी। वह समाज असभ्य भी नही माना जा सकता, कुछ बातोंमे आजसे अधिक संस्कृत और परिष्कृत था। आज तो, सही अर्थोमे, अशोक-वाटिकामे सीताके चारों ओर नियुक्त पहरेदारिनों जैसी देवियाँ भी रंगमञ्चपर प्रस्तुत होनेमे अपने नारीत्वका अपमान समझती है। ताड़का और शूर्पणखाओको भी छुई-मुई समझनेवाले उनके अभिभावक आदर्शका राग अलापते है। बंगाल और महाराष्ट्रकी बात नही कह रहा हूँ जहाँ सुपठित और संस्कृत परिवारोकी महिलाएँ रंगमञ्चकी सेवामें गौरव समझती है और समाज उन्हें समुचित सम्मान देता है। मै इस ओरके समाजके तथाकथित कर्णधारोंकी बात कह रहा हूँ। दर्शकके रूपमें स्वय रंगमहलमे बैठकर वह भूल जाते है कि उनके सामने प्रस्तुत नाटक अथवा चलचित्रमे काम करनेवाली महि-

लाएँ भी किसीकी बहू-बेटी-पत्नियाँ हैं। इस नाटकके अभिनय-मे, इसीलिए बहुत चेष्टा करनेपर भी पात्रा न मिल सकनेके कारण दूसरे अंकमे वासन्तीको पुरुष-रूप देना पड़ा—वसन्त! यहाँ मूल-रूप वासन्ती (आभार स्वर्गीय श्री द्विजेन्द्रलाल राय) ही दिया गया है, इस विश्वाससे कि यदि कोई अन्य व्यक्ति या संस्था कभी इसका अभिनय प्रस्तुत करना चाहे तो उसे कला-सेविकाका गौरव पहचाननेवाली युवतियोंका अभाव न होगा।

रंगमञ्चका ध्यान मेरे लिए प्रमुख रहा है किन्तु साहित्य-पक्ष मैंने विस्मृत करनेकी चेष्टा नहीं की है। हिन्दीमे अभिनेय नाटक नही है, दृश्य-काव्यका जो प्रधान लक्षण है, इस अभि-योगका मार्जन करनेके लिए मैं स्वयं अभिनीत करनेके बाद ही नाटक प्रकाशित करना उचित मानता हूँ। आवश्यक काट-छाँट हो जाती है। 'भूमिजा'के साथ भी ऐसा ही हो रहा है।

अबतक अपने चार नाटक रंगमञ्चपर प्रस्तुत कर चुका हूँ। 'विषपान', 'चेतसिंह', 'सिराजुद्दौला' और यह 'भूमिजा'। एक यह मत भी सुना कि नाटकमें लंबे संवाद उपयुक्त नहीं होते। बात सही है किन्तु सब नाटकोके विषयमे नही। नाटकमें जहाँ किसी घटनाविशेषका दिग्दर्शन इष्ट हो अथवा जो प्राचीन परिपाटीमें पर्दोंपर खेले जाते हों या फिर वर्त्तमान सामाजिक पृष्ठभूमिपर जो आधारित हों, वहाँ और उनमे यह संभव है। जहाँ अल्पावधिमें इतिहासका विस्तार भरना हो और एक-दो सेटपर ही अभिनय प्रस्तुत करना हो अथवा ऐतिहासिक और पौराणिक आख्यानोंका जहाँ सम्बन्ध हो वहाँ सवादोंकी संक्षिप्तता सदैव वाछनीय नही है। परिस्थितिके अनुरूप संवाद होंगे ही। अभिनेता यदि पटु हों तो दर्शक लम्बे संवादोके साथ भी सहज निर्वाह कर सकता है।

निर्देशन, मच-व्यवस्था, रूपसज्जा, प्रकाश और ध्वनि-संयोजनके वह प्रयोग सकेत रूपमे दे देना यहाँ अच्छा होता जिनका उपयोग 'भूमिजा'के प्रस्तुतीकरणमे मैंने किया था। पहले अंकका आरम्भ तथा दूसरे अकका सम्पूर्ण विस्तार विशेष प्रकारकी प्रकाश-सयोजना, मच-व्यवस्था और सज्जाकी अपेक्षा रखते हैं। किंतु यह लोभ संवरण कर रहा हूँ। संभवतः कोई अन्य निर्देशक बिलकुल ही दूसरे नाटकीय उपकरणोसे वह प्रभाव ला सके जो इस नाटकके प्राणके लिए वाछित है। निर्देशक स्वतन्त्र होता है, नाटकके आत्माका ही उसपर बंधन होता है।

नटराज मुझे बल दें और आप अपनी सहानुभूति, कि अभिनय-कलाके माध्यमसे अपने महान् देशकी यत्किचित् सेवा कर सकूँ।

मुख्य मंत्री भवन,
कालिदास मार्ग, लखनऊ

—सर्वदानन्द

'नटराज' द्वारा 'भूमिजा' का अभिनय प्रथम-बार २३ फ़रवरी १९५९ को लखनऊमें उत्तरप्रदेश सरकारके विकास संग्रहालयके रंग-मञ्चपर प्रस्तुत किया गया। निर्देशक थे श्री सर्वदानन्द और श्री विश्वनाथ मिश्र। जिन कलाकारोंनें अभिनयमें भाग लिया उनके नाम क्रमसे दिये गये है।

कञ्चुकी	कृष्णलाल दुआ
लक्ष्मण	बेंजमिन ग़ज़न
उर्मिला	कुसुम शुक्ल
प्रतिहारी	ओम्प्रकाश सेठी
दुर्मुख	विश्वनाथ मिश्र
भरत	मनमोहन शर्म्मा
राम	**सर्वदानन्द**
शत्रुघ्न	प्रतापनारायण 'प्रवीण'
कौशल्या	कृष्णा मिश्र
सीता	**सोना चटर्जी**
वाल्मीकि	रामकुमार शर्मा
लव	किशोरीलाल पांडे
कुश	गंगाराम पाल
वासन्ती (वसन्त ?)	के० के० सिंह
(आभार श्री द्विजेन्द्रलाल राय)	
चन्द्रकेतु	दिनकर
सैनिक	लक्ष्मीनारायण वाजपेयी

भूमिजा
सर्वदानन्द

एक

[अयोध्यामें महाराज दशरथके प्रासादका एक कक्ष। पार्श्वकी दोनों दीवारोंमें द्वार है जिनपर पुष्पोंके बन्दनवार सजे हैं और पर्दे लटक रहे है। बीचकी दीवारके मध्यमें बने हुए वातायनसे आकाशका नक्षत्ररहित कुछ भाग देख पड़ रहा है। वातायनके कपाट खुले हुए है और पर्दा खिंचा हुआ एक ओर लटक रहा है। खिड़कीके ऊपर बीचमें बड़े आकारमें सीताकी अग्निशुद्धिका चित्र अंकित है। ऊँचे-ऊँचे दीपाधारोंपर बड़े-बड़े दिये जल रहे है। धूपदानोंसे अगुरु-चन्दनका धूम्र निकलकर कक्षमें फैल रहा है। तूणीरसहित रामका बड़ा धनुष एक ओर टँगा हुआ है, दूसरी ओर दीवारसे टिकाकर दो-तीन भाले खड़े किये हुए हैं। एक कोनेमें वनगमनकी स्मृति गैरिक-वसन और काष्ठ-कमण्डलु एक छोटी चौकीपर रखे हैं। कक्षके मध्यमें बैठनेके लिए बड़ी चौकीपर झालरदार रंगीन वस्त्र पड़ा हुआ है और उसपर बिछे मृगचर्मका कुछ भाग नीचे लटक रहा है। चित्रके ऊपर बड़ा-सा सूर्य बना हुआ है। नेपथ्यमें निम्नलिखित श्लोकोंका गंभीर पाठ होता है। यह अंश मूल नाटकसे संबद्ध नहीं है, आवश्यकतानुसार अवसरके उपयुक्त कुछ अन्य पाठ भी हो सकता है। वातावरणकी सृष्टिमें अवसरानुकूल कुछ पाठ सहायक होगा।]

[दूरागत मेघगर्जन]

प्रजावती दोहदशंसिनी ते, तपोवनेषु स्पृहयालुरेव ।
स त्वं रथी तद्व्यपदेशनेयां प्रापय्य बाल्मीकिपदं त्यजैनाम् ॥
जानामि चैनामनघेति किन्तु लोकापवादो बलवान् मतो मे।
छाया हि भूमेः शशिनो मलत्वेनारोपिता शुद्धिमतः प्रजाभिः ॥

[यवनिका हटनेके पूर्व, पाठकी समाप्तिके साथ ही, नेपथ्यसे मेघगर्जन रह-रहकर स्पष्ट सुन पड़ने लगता है । धीरे-धीरे पर्दा हटता है, अर्द्ध-प्रकाशित रंगमंच देख पड़ता है । दियोंकी लौ हिल रही है, ऐकाध दिया बुझ जाता है । वातायन और द्वारोंके पर्दे हवासे उड़ रहे हैं । वातायनसे दिखनेवाले आकाशके क्रोड़में बिज्ली रह-रह-कर चमक उठती है ।]

कञ्चुकी : [प्रवेश करता है ।] कञ्चुकीके भाग्यमें यह दिन देखना भी लिखा था भगवान् ! इसीके लिए कञ्चुकी जीवित है ? फट जाओ धरती माँ और इस बूढ़ेको अपनेमे समेट लो । अब नहीं सहा जाता प्रभो ! [पर्दोंको ठीक करनेकी चेष्टा करता है, कभी दियोंको आड़में करता है ।] जनताका····पागलपन राजाके हृदयका रक्त पीना चाहता है और राजा प्रजाके विश्वासकी वेदीपर अपना सर्वस्व लुटा कर उसे सन्तुष्ट करना चाहता है । [वातायनका पर्दा ठीक करनेकी चेष्टा करता है किन्तु हवाका वेग प्रबल है । अन्तमें कपाट बन्द कर देता है । मेघगर्जनका स्वर मन्द पड़ जाता है ।] सतीका अपमान आकाशकी आँखोमे बिजली बनकर चमक रहा है । आज प्रलय हो ।

जायगा। सब कुछ उलट-पुलट जायगा। [**एक ओर द्वारके कपाट बन्द करने जाता है, दूसरी ओरके द्वारसे लक्ष्मणका प्रवेश। मुकुट उतारकर बीचकी चौकीपर रख देते हैं और चित्रके नीचे खड़े होकर उसे एकटक देखने लगते हैं।**]

कञ्चुकी : [**दूसरी ओरके कपाट बन्द करनेके लिए जाते हुए, लक्ष्मणको देखकर**] भैय्या लक्ष्मण! इतनी रातको···· अभी सोये नही ? [**कपाट बन्द करता है।**]

लक्ष्मण : [**उत्तर नहीं देते, चित्र देखते रहते हैं।**]

कञ्चुकी : [**पास जाकर**] भैय्या लक्ष्मण !

लक्ष्मण : [**वैसे ही**] यह चित्र आप देख रहे है आर्य ? देवी सीता-की अग्निशुद्धिका यह चित्र····चित्रकार अर्जुनने लंकाके उस अन्यायको इसमे सजीव कर दिया है। माता सीताके नेत्रोसे झरते हुए आँसू आप देख रहे है आर्य कञ्चुकी ?

कञ्चुकी : यह आँसू नहीं है लक्ष्मण ! देवी सीता तो महाआनन्दमयी है। रघुकुललक्ष्मीकी आँखोसे बहा हुआ जल गंगाजलकी निर्मल धारा है। पाप इसमे धुलकर पुण्य बनकर निखर उठेगा। [**दियेकी लौ उकसाता है।**]

लक्ष्मण : किन्तु उस दिनका पाप आज सौगुना होकर सती सीताका मुख मलिन कर रहा है आर्य कञ्चुकी ! [**कञ्चुकीके पास आकर, चित्रकी ओर संकेत कर**] कहाँ है इस निर्मल आननपर वह कलकविन्दु जिसे भैय्या अपने अक्षम हाथों-से बार-बार पोंछना चाहते है ? नारीके विश्वासपर पुरुषके अविश्वासकी यह विजय ही क्या आदर्श है आर्य ?

कञ्चुकी : [**चुपकेसे आँसू पोंछ लेता है, फिर गैरिक-वसन और कमण्डलु ठीकसे रखने लगता है ।**]

लक्ष्मण : चुप कैसे रह गये आर्य ? रघुकुलकी मर्यादा आज एक निरपराध नारीका बलिदान चाहती है। प्रजा अपनी महारानीका परित्याग माँग रही है। उसके अन्दरका पिशाच आज अट्टहास कर उठा है। उसकी सर्वनाशी प्यास आज उन्मत्त हो उठी है। दोगे उसकी भूखका भोजन ? जुटाओगे उसकी राक्षसी आगका ईंधन ? हे भगवान् ! [**मुकुट उठा लेते हैं, उसे संकेतकर**] अब भी तुम्हारी भूख शान्त हुई या नहीं ? बोलो, अब तुम्हे और क्या चाहिए ?

कञ्चुकी : पागल न बनो लक्ष्मण ! अविश्वासके यह बादल एक दिन छँट जायेंगे। सत्यका सूर्य मेघोंकी छायासे एक दिन बाहर निकल आयेगा। सतीकी हँसीसे उस दिन ससार विहँस उठेगा।

लक्ष्मण : [**मुकुट चौकीपर फेंककर**] और उस दिनकी प्रतीक्षामे नारीकी एक निष्ठा अपना आँचल फैलाये नरकी कठोरतासे भीख माँगती रहेगी ? यही न ? पुरुषके संदेहकी शिलापर स्त्रीका निर्मल विश्वास सिर धुनधुनकर मरता रहेगा तब तक ? यही होगा मर्यादापुरुषोत्तम रामका न्याय ? [**चौकी पर बैठ जाते हैं ।**] मुनि अष्टावक्र जिस दिन आये थे उस दिन आप भी तो वहाँ थे आर्य ? क्या कहा था भैय्याने ?

कञ्चुकी : मैने ही तो उनके आनेकी सूचना महाराजको दी थी।

लक्ष्मण : महाराजको ? भैय्या राम आपके लिए महाराज कबसे हो गये आर्य कञ्चुकी ?

[**वातायनके कपाट हवाके वेगसे खुल जाते हैं। कञ्चुकी पास जाकर बन्द करता है।**]

कञ्चुकी : [**वहींसे**] कञ्चुकीका बूढा शरीर आदर और सम्मानका यह बोझ नहीं सह सकेगा लक्ष्मण !•••उस दिन रामभद्रने भी तो यही कहा था—'आर्य कञ्चुकी, स्वर्गीय महाराज दशरथके समयसे रामभद्र कहते आये हो, वही कहो।

लक्ष्मण : ठीक ही कहा था भैय्याने।•••मुनि अष्टावक्रको भैय्याने क्या वचन दिया था ?

कञ्चुकी : भगवान् वसिष्ठने आदेश भेजा था—राजाका धन उसका निर्मल यश है। प्रजारंजन उसका एकमात्र कर्त्तव्य है। रामभद्रने यह काँटोंका ताज पहना है तो प्रजाकी परीक्षामे उन्हे खरा उतरना होगा।

लक्ष्मण : और भैया रामने उत्तरमें क्या कहा आर्य ?

कञ्चुकी : रघुकुलकी परम्परा क्या कहती है लक्ष्मण ? सूर्यवंशकी सन्तानसे किस उत्तरकी आशा रखते हो ? रामभद्रने भगवान् वसिष्ठको वचन दिया था—प्रजाकी सेवाके लिए अपने हृदयकी दया, ममता, क्षमा, सब कुछ वह बलिदान कर देंगे। प्राणोसे प्रिय जानकीका परित्याग भी•••

लक्ष्मण : [**जल्दीसे चौकीसे उठकर**] आर्य कञ्चुकी, मातेश्वरी सीता रामकी सम्पत्ति नहीं है। लक्ष्मणके जीते जी यह अन्याय नहीं होगा। राम अपनी धन-सम्पदा, राजमुकुट, यह राजभवन, अपना सर्वस्व, सब कुछ प्रजाके पागलपनपर बलिदान करदें, लक्ष्मण उनके इस अधिकारको चुनौती नही देगा। किन्तु देवी सीताका निष्कलंक सतीत्व प्रजाके अपवादसे लाछित हो, इतना बडा अपराध•••लोग चाहते

क्या है आर्य ? देवी सीताके स्थानपर किसी अन्य नारीको…

कञ्चुकी : [**एक द्वारके कपाट खोलते हुए**] लक्ष्मण ! अपराधकी बात क्यो करते हो लक्ष्मण ? [**बाहर झाँककर**] आँधीका वेग वैसा ही है। प्रकृतिका पागल ताण्डव वैसा ही चल रहा है। [**द्वार बन्द कर देता है।**] अपने भैय्याको तुमने आजतक नही पहचाना लक्ष्मण ? उनके हृदयके सिंहासनपर सीताके अतिरिक्त किसी दूसरी नारीकी प्रतिष्ठा… [**आँसू पोंछ लेता है।**] ऐसा सुननेसे भी पाप होता है लक्ष्मण। यह तुमने कहा ? और मैं चुपचाप सुनता रहा ? सुननेके पहले ही मै बहरा क्यों नही हो गया भगवान्। [**फिर आँसू पोंछता है।**]

[**दूसरे द्वारसे उर्मिलाका प्रवेश। हाथमें एक बेंतोंकी पिटारी है। कञ्चुकीको देखती हैं।**]

उर्मिला : [**एक हाथसे माथेपरका वस्त्र ठीक करते हुए**] आर्य कञ्चुकी ! प्रणाम करती हूँ।

[**पिटारी चौकीपर रखकर झुककर प्रणाम करती हैं।**]

कञ्चुकी : आयुष्मती होओ बेटी। पति-पुत्रकी सेवामे तुम्हारा जीवन धन्य हो। [**फिर आँसू पोंछता है।**]

उर्मिला : [**उठकर**] आपकी आँखोंमे यह आँसू कैसे आर्य ? किसने आपका अपमान किया ? [**लक्ष्मणके पास जाकर**] किसका ऐसा साहस है देव…

कञ्चुकी : [**हँसनेकी चेष्टा करते हुए**] अयोध्यामें इस बूढ़े कञ्चुकी-का अपमान करनेका साहस किसमे है बेटी ? बहुत अधिक

सम्मानसे भी आँखोमे आँसू छलछला आते है । [**लक्ष्मणसे**] वत्स, रामभद्रपर तुम्हारा यह क्रोध भक्तिका ही दूसरा रूप है लक्ष्मण । स्नेह आघात पाकर चचल हो उठा है । मै चलता हूँ बेटी, तुम लोग भी अब विश्राम करो ।

[द्वारके पास पहुँच जाता है और कपाट खोलने लगता है ।]

लक्ष्मण : [**बढ़ते हुए**] उर्मिलाको तो आशीर्वाद दे गये आर्य पर देवी सीताके लिए कुछ नही कहा ! उनके हृदयकी ज्वाला तुम्हारी सान्त्वनाका जल चाहती है !

कञ्चुकी : [**घूमकर**] मेरी सान्त्वना ? आग भी जिसको छूकर पवित्र हो गई उसे मेरी सान्त्वना चाहिए ? वह तो धरती-की बेटी है लक्ष्मण, भूमिजा ! वह सब कुछ सहन कर लेंगी ! फिर भी इस बूढेके रोए-रोंएसे उनके लिए मंगल-कामनाकी वर्षा हो रही है । वह सुखी होंगी लक्ष्मण, इस कलंकसे उनका आनन धूमिल न होगा । [**कपाट खोलता है, तीव्र वायुका झोंका अन्दर आता है ।**] रक्षा करो भवानी, रक्षा करो । [**बाहर जाकर कपाट बन्द कर देता है ।**]

उर्मिला : [**कुछ क्षण बाद**] आर्य कञ्चुकीका स्नेह सीमा नही जानता ।····यह जो सुनती हूँ वह सच है देव ?

लक्ष्मण : [**चौकीपर बैठ जाते है ।**] झूठ कहनेका साहस नहीं होता उर्मिला ।····तो महलमे सब लोगोंने यह समाचार सुन लिया ?

उर्मिला : सुन लिया ? कलककी यह कहानी कुण्डली मारकर सबके वक्ष पर जम गई है स्वामी । आँधीकी प्रत्येक उन्मत्त लहर यही

सूचना दे रही है। जल-थल-आकाश, सबमे यही एक सकेत है। यही अपवाद मेघोकी छाती चीरकर बिजली बनकर गिर रहा है। सुनिए देव, चारो ओरसे यही एक स्वर, यही एक लाछन पुकार-पुकारकर कह रहा है—देवी सीता असती। राजरानी जानकी कलकिनी है। प्रजाके हृदयका दानव अपनी महारानीका अपमान देखकर अट्टहास कर रहा है किन्तु····किन्तु यह असम्भव है देव! असम्भव!

[मुँह ढाँपकर रोने लगती है।]

लक्ष्मण : **[उत्तेजित उठकर]** सम्भवके आसनपर आज असम्भवकी पूजा हो रही है उर्मिला। सत्यके मन्दिरमे असत्यकी प्राण-प्रतिष्ठा हो रही है। विश्वासकी छातीपर अविश्वासका ताण्डव चल रहा है। न्याय घुटने टेककर अन्यायसे अपने प्राणोकी भीख माँग रहा है। राजाका धर्म प्रजाके पागल-पनका सकेत पाकर पापको पुण्यकी सज्ञा दे रहा है। लोका-पवाद आज सत्य हो गया है और देवी सीताके निष्कलंक, निर्मल सतीत्वका परिचय एक विडबना, एक मिथ्या···· पर अब कोई उपाय नहीं है उर्मिला। विष समूचे शरीरमे फैल चुका है। अब कोई उपाय नही है। **[चौकीपर हताश भावसे बैठ जाते हैं और पिटारी हाथमें उठाकर देखने लगते हैं। खोलनेपर उसमेंसे नवजात शिशुओंके पहिननेके योग्य सुन्दर वस्त्र चौकीपर गिर पड़ते है।]**

उर्मिला : **[पास जाकर नीचे बैठकर]** माता कौशल्याने कितनी साधसे यह सब बनवाया था देव! मै देवी सीताके पास बैठी दिखा रही थी। उसी समय दासीने आकर यह समा-

चार दिया। भोजन वैसा ही पडा रह गया स्वामी, उन्होंने छुआ भी नहीं।

लक्ष्मण : [**उत्सुक**] तब देवीने क्या कहा उर्मिला ?

उर्मिला : आँधी आनेके पहले आकाश शान्त-स्थिर हो जाता है देव ! सीताके मुँहसे एक शब्द भी नही निकला। कुछ भी तो नही था उस मुखपर—आक्षेप, अभियोग, अनुनय-विनय, स्नेह-घृणा, सब जैसे कही खो गये थे। चुपचाप, एकटक भूमिकी ओर देखती रही ! देखती रहीं ! उस सूनी दृष्टिकी तन्मयता भंग करनेका साहस मुझे नही हुआ देव ! वह कुछ क्षण कल्प बन गये और उस कल्पमे सृष्टिकी सारी वेदना दया-ममता, वात्सल्य और प्रेम टूट-टूटकर बिखर गये।

लक्ष्मण : [**उठकर विचलित स्वर**] उर्मिला

उर्मिला : [**पिटारीमें वस्त्र रखते हुए, बैठे ही बैठे**] हाँ देव ! सब कुछ टूट-फूटकर बिखर गया। मनुष्यकी मनुष्यता सौ टुकडे होकर दानवताके चरणोपर लोटने लगी। [**पिटारी बन्द करके खड़ी होकर**] देवीने पॉवसे यह पिटारी हटाकर कहा—ले जाओ बहन, यह सब। तापसकुमारोको यह सब शोभा नही देगा। वनमें तो कन्द-फल-मूलका ही आहार होगा न ! वनवासिनी सीताकी सन्तान वल्कल-वसन पा जाये तो यही उसके लिए बहुत होगा।

लक्ष्मण : बस करो उर्मि। मै नहीं सुन सकूँगा। भैय्याने बुलाकर कहा—लक्ष्मण, देवी सीताके साथ तुम्हे स्वयं जाना होगा। वाल्मीकि ऋषिका आश्रम उन्हे पाकर धन्य होगा। मै भैय्याके पाससे चला आया, उर्मिला ! पर यहाँ आकर···· [**चित्रके नीचे जाकर**] इस चित्रके नीचे खड़े होकर मै

कितना रोया हूँ····कितना जल इन आँखोसे बह गया है, कोई नही जानता। लगा कि यह समूचा विश्व, भगवान्‌की यह सारी सृष्टि उस जलप्लावनमे डूब जायँगे।····डूब जाय उर्मिला! सब कुछ इस अश्रुसागरके अतल तलमे बैठ जाय। किसीमे शक्ति न हो कि इस प्रलयको रोक सके। [**माथेपर मुट्ठीसे पीटते हुए**] भीमा, भैरवी, भगवती, भवानी। समेट लो सब कुछ अपने भयंकर अकपाशमे।

उर्मिला : [**पास आकर**] दुर्मुख झूठ भी तो बोल सकता है स्वामी? वह क्या एक बार चिल्लाकर अयोध्याकी प्रजासे कह नही सकता कि उसने झूठ कहा है? वह जो कुछ माँगे उसे पुरस्कार दीजिए। ऐश्वर्य्यसे उसका घर भर दीजिए देव! अयोध्याका आधा राज उसे दे दीजिए फर उसके···· उसके एक झूठसे कितने बड़े सत्यकी रक्षा हो जायगी, यह नहीं देखते आप?

लक्ष्मण : [**कुछ बोलते नहीं, विवशतासे टहलते रहते हैं।**]

उर्मिला . तपोवन दिखानेके बहाने गर्भवती सीताको महर्षि वाल्मीकिके आश्रममे छोड आना कितना बडा छल होगा स्वामी?

[**द्वारके बाहरसे स्वर आते हैं—"आर्यपुत्रकी जय हो।" लक्ष्मण पूछते है—"कौन?" बाहरसे उत्तर आता है—"मैं हूँ देव। प्रतिहारी।"**]

लक्ष्मण : द्वार खुला है। [**चौकीपर बैठ जाते है।**]

प्रतिहारी : [**अन्दर आकर अभिवादन करता है।**] आर्यपुत्रकी जय हो। महाराज रामचन्द्र भगवान् वसिष्ठके पास चम्पकारण्य गये थे।

लक्ष्मण : जानता हूँ। आगे कहो।

प्रतिहारी : वह अभी-अभी लौटे है।

लक्ष्मण : भैय्या अभी लौटे है ? इस आँधी-पानीमे ? सब कुशल तो है न प्रतिहारी।

प्रतिहारी : राज-काजमे महाराज रामचन्द्रका रथ क्या आँधी-पानीसे डरता है देव ? कुशलता तो उनकी दासी है। महाराजने पूछा है—भगवती सीताके तपोवन जानेका प्रबन्ध पूरा हो गया ?

लक्ष्मण : महाराजसे कहो प्रतिहारी, उनकी आज्ञाका पूरा-पूरा पालन होगा। उषाकी मंगल वेलामे महारानी सीता तपोवनके लिए प्रस्थान करेगी और यह सेवक उनके साथ जायगा। महाराज प्रसन्न हो।

प्रतिहारी : जय हो देवकी ! [**अभिवादन करके जाता है।**]

उर्मिला : [**पास आकर विकल स्वरोंमें**] रोक लीजिए इस विनाश-को देव ! बन्द कर दीजिए सर्वनाशकी यह विध्वंस-लीला। रघुवशके निर्मल यशपर कलंकका यह टीका न लगने पाये आर्यपुत्र।

लक्ष्मण : [**उठकर**] उसी यशके जयघोषके लिए तो यह आयोजन हो रहा है उर्मिला ! प्रशंसाके उस कोलाहलमे देवी सीताका मौन उत्सर्ग लोग भूल जायेगे।

उर्मिला : [**सतेज**] नही, कभी नहीं भूलेगे। नारीका यह पुण्य पुरुषको पाप बनकर ग्रस लेगा।....मैने भी नारीका हृदय पाया है। मेरे माथेपर भी सौभाग्यका चिह्न है। सतीके हृदयकी निष्ठासे मेरा भी परिचय है स्वामी। पतिको

सम्पूर्ण समर्पणके बीचसे पाकर फिर खो देनेमें कितनी गहरी व्यथा है, यह पुरुष होकर आपलोग कैसे जानेंगे ?···· क्या आप विद्रोह नही कर सकते ?

लक्ष्मण : आँधीके इस पागल वेगको अकेला लक्ष्मण कैसे रोक लेगा उर्मिला ? केवल अयोध्याके महाराज रामचन्द्रकी आज्ञा तो नहीं है ! यह तो लक्ष्मणके भैय्या रामकी इच्छा है।···· आज सोचता हूँ उर्मिला, माँ कैकेयीने भैय्याके साथ उपकार किया था। राजमुकुटका वरदान भैय्याके लिए अभिशाप बन गया।

उर्मिला : उन बातोको जाने दीजिए। अयोध्याका राजसिहासन आर्यपुत्र रामके बिना धन्य न होता।

लक्ष्मण : इतना विष भी तब सरयूमे प्रवाहित न होता, यह क्यों नही कहती उर्मिला ? [**इसी समय दुर्मुख अन्दर आता है और एक ओर खड़ा हो जाता है। उसे कोई देखता नहीं।**]

उर्मिला : दुर्मुखकी लगाई हुई यह आग अयोध्याको भस्म कर डालेगी स्वामी ! प्रजाके एक साधारण जनके कहनेपर राजरानीका परित्याग भविष्यका इतिहास कभी क्षमा नही करेगा। नरकी मर्यादा नारीके इस बलिदानसे गौरवके शिखरपर नही चढ़ेगी। हम नारी हैं, सहनेके लिए ही हमारा जन्म हुआ है। आप पुरुष है, जेठ जी भी पुरुष है। आप लोगोको अपनी मर्यादा प्यारी है, राजकाज देखना है, अपने वंशका मुख उज्ज्वल रखना है, और हमारा काम है आपके झूठे, थोथे मानको पुचकारते रहना। राम आज्ञा दे सकते है और लक्ष्मण उनकी आज्ञा मानकर गर्भवती सती सीता

को हाथ पकड़कर निर्वासन दे सकते है। तो वही कीजिए···लेकिन मैं चुपचाप इस अन्यायके आगे माथा नही झुका सकती। जाती हूँ माँ कौशल्याके पास। माँकी ममताको उभारूँगी। कर्त्तव्य बड़ा है या प्रेम, नही जानती पर····आज आपके कर्त्तव्यको उर्मिलाका स्नेह चुनौती देगा देवता! आशीर्वाद दीजिए कि सफल हो सकूँ।

[लक्ष्मणके पावोंके पास बैठ जाती है। लक्ष्मण मस्तकपर हाथ फेरकर आशीष देते हैं।]

लक्ष्मण : तुम्हारा विद्रोह सफल हो उर्मिले! लक्ष्मणकी पराजय तुम्हारी वेदनासे विजयका सिहद्वार बने। भीखके लिए फैला तुम्हारा आँचल महारानी सीताके लिए रक्षाका व्यूह बन जाय, भगवान् तुम्हे शक्ति दें। जाओ उर्मिला, समय कम है। भोर होनेमे विलम्ब नही है। मुझे भी तब तक एक बार सब व्यवस्था तो देख ही लेनी होगी।

[जिधर दुर्मुख खड़ा है, उसी ओरके द्वारसे जानेके लिए उर्मिला बढ़ती है। दुर्मुखको देखकर एक क्षण ठिठकती है, फिर घृणासे उसकी ओर देखकर कपाट खोलकर बाहर निकल जाती हैं। आँधी और बिजलीके स्वर बन्द हो गये हैं। दूर पर सारंगीपर करुण रागिनी अवतरित हो रही है। दूसरे द्वारसे लक्ष्मण बाहर जाते हैं। वह तो दुर्मुखको देख भी नहीं पाते। जाते-जाते अपना मुकुट पहननेके लिए उठाते हैं, फिर कुछ सोचकर उसे फेंक देते है। वह पृथ्वीपर गिर जाता है।]

दुर्मुख : **[आगे बढ़कर]** इतनी घृणा? किन्तु यही तो दुर्मुखका पुरस्कार है। यही तो उसे मिलना चाहिए। **[मुकुट**

उठाकर] राजाका सम्मान आज धूलमे लोट रहा है। मर जा रे दुर्मुख ! अब भी तू जी रहा है ? [**मुकुट चौकी-पर रख देता है।**] तेरी जीभ क्यों नही ऐंठ गई रे ? माता सीतापर लगे लांछनको सुनकर भी तू चुप रहा ? महाराज रामसे वह सब कहनेका तुझे साहस कैसे हुआ ? तुझपर विधाताके कोपका वज्र क्यो नही गिर पड़ा ?

[**दूसरे द्वारसे भरतका प्रवेश**]

भरत : कौन ? दुर्मुख ?

दुर्मुख : हाँ स्वामी ! आपका सेवक दुर्मुख !

भरत : सेवकका शब्द तुम्हारे मुँहसे शोभा नही देता दुर्मुख ! शत्रु कहो, रघुवंशके भयानक शत्रुके रूपमे तुम्हारा नाम इतिहास मे अमर रहेगा....अब भी कुछ शेष है क्या ? फिर यहाँ क्यो आये हो ? सेवकका कुछ और कर्त्तव्य पूरा करना है ? सब कुछ तो छीन लिया रे नीच, और क्या चाहता है ?

दुर्मुख : [**वस्त्रोंके भीतरसे एक मुद्रिका निकालकर भरतके पावोंके पास रख देता है।**] महाराजको ढूँढ़ रहा था किन्तु आपको पाकर मेरा काम पूरा हो गया।

भरत : [**मुँह बिगाड़कर**] महाराजको ढूँढ रहा था। किन्तु वह तो सब कुछ खोकर अब भिखारी हो गये है। महाराज कहकर उनका अपमान मत करो। राजकुलकी श्री प्रजाकी इच्छाके पावोतले रौंदी जा चुकी। [**मुद्रिकाको पाँवसे ठुकराकर**] यह क्या है ?

दुर्मुख : महाराज रामचन्द्रका दिया हुआ परिचय-चिह्न ! गुप्तचरका काम करनेके लिए आदेश-चिह्न चाहिए था न स्वामी !

मैने कर्त्तव्यका पालन कर दिया। अब आप इसे रक्खें और मुझे छुट्टी दे। [**रोने लगता है।**] मेरा रोम-रोम जला जा रहा है स्वामी! मेरे पापकी कही क्षमा नहीं है। इतने बड़े विश्वमे कहीं भी मेरे खड़े होनेको आज ठौर नहीं। महाराजसे वह बात कहनेके पहले ही मैं मर गया होता तो अच्छा था। महारानी सीता असती? राजरानी सीता कलंकिनी? मेरे कानोंने यह स्वर चुपचाप पी लिये? क्यों मैंने महाराज रामचन्द्रसे कहा? क्यों कहा? किसने मुझे यह दुर्बुद्धि दी? मुझे क्षमा कर दीजिए…दयाकी भीख दीजिए देव! मेरी ज्वाला शान्त कीजिए।

भरत : गुप्तचरका कर्त्तव्य राजाको प्रजाकी भावना बता देना है। किन्तु अपने प्रति भी तो तेरा कुछ कर्त्तव्य था दुर्मुख! तेरे हाथ कटकर गिर गये थे क्या? भगवती सीतापर लाछन लगानेवाले उस धोबीका मस्तक शरीरपर टिका कैसे रह गया? क्यों नही तूने उस नीचकी जीभ खीच ली? उसे अपने अपराधका दण्ड क्यों नहीं दिया?

दुर्मुख : आज्ञा नही थी देव, नहीं तो दुर्मुखके हाथ इतने दुर्बल नहीं है। महारानीके चरित्रपर सन्देहकी छाया देखनेके पहले दुर्मुख स्वयं प्राण दे देता या उसके प्राणोंसे खेल जाता।

भरत : [**क्रोधसे**] तेरे प्राण तो भरतकी धरोहर थे दुर्मुख। [**दीवारके पास जाकर एक भाला निकालने लगते हैं।**] इस हिंसासे भरतके हाथ कलंकित नहीं होगे। [**पास आकर भाला तानते हैं**] तूने अपना नाम सार्थक कर दिया। तुझे तो अपने कर्त्तव्य-पालनका पुरस्कार मिलना चाहिए।

दुर्मुख : इतने सुखकी मृत्यु किसी सेवकके भाग्यमे कहॉ ? [**वक्ष खोल देता है ।**]

[**भाला दुर्मुखकी ओर फेंकना चाहते हैं, उसी समय बाहरसे स्वर आते हैं—"आर्य लक्ष्मण" । भरतके हाथ झुक जाते हैं, प्रतिहारी प्रवेश करता है । कुछ क्षण वह आश्चर्यचकित देखता रहता है, फिर आगे बढ़कर—**]

प्रतिहारी : [**अभिवादन कर**] क्षमा हो देव ! आर्य लक्ष्मण कहॉ है ?

भरत : [**भाला एक ओर फेंककर**] जा दुर्मुख ! मृत्युने भी तेरी ओरसे घृणासे मुँह फेर लिया । अपना पाप लेकर जीवित रह !....अभी खड़ा क्यों है कृतघ्न ? चला जा मेरी आँखोंके सामनेसे ।....क्या है प्रतिहारी ?

प्रतिहारी : भैय्या लक्ष्मणको महाराजने स्मरण किया है। माता कौशल्या मूर्च्छित हो गई है ।

भरत : मूर्च्छित ? माता कौशल्या मूर्च्छित ? कहता क्या है प्रतिहारी ? भैय्या कहाँ है ?

प्रतिहारी : माँके पास । खुली खिडकीके पास खड़े, सरयू तटके अन्धकारमे आँखें फाड़-फाड़कर न जाने क्या ढूँढ़ रहे है ।

भरत : मै जानता हूँ वह क्या ढूँढ रहे हैं प्रतिहारी । ढूँढ़ रहे है सूर्यवशकी श्री-सम्पदा जो सरयूतटके उस अन्धकारमे सदाके लिए सोने जा रही है। आजका प्रभात सरयूके उस तटपर होली जलते देखेगा, महाराज रामचन्द्रके मन-प्राणकी धू-धू जलती होली ।...चलो प्रतिहारी, भैय्या लक्ष्मण भी अन्त.पुरकी ओर गये है । चलो....हँसो दुर्मुख, अट्टहास करो । मरघट बनी हुई अयोध्याकी धरतीपर पिशाच बन-

कर नृत्य करो। नाचो, नाचो दुर्मुख ! अट्टहास करो, जहाँ जो हों, सबको बुला लो। ऐसा सयोग फिर कहाँ मिलेगा रे नीच ! ऐसा संयोग फिर कहाँ मिलेगा ?

[जल्दीसे चले जाते है। पीछे-पीछे प्रतिहारी जाता है।]

दुर्मुख : कही क्षमा नही। किसीके मनमे दुर्मुखके लिए करुणा नही। घरमे पत्नीका व्यङ्ग छाती छेद रहा है, बाहर घृणा और उपेक्षाके काँटे पथपर चलने नही देते। लेकिन मैने कौन-सा अपराध किया भगवान् ? स्वामीकी आज्ञाका पालन ही तो किया है ? तब फिर मेरी अन्तरात्मा क्यों मुझे धिक्कार रही है ? मेरा हृदय क्यो मुझे अपराधी कह रहा है ? क्या स्वामी से झूठ बोलता ? क्या उनके साथ छल करता ? यही मेरा कर्त्तव्य था ? महाराजने ही तो कहा था—दुर्मुख, प्रजाकी भावना जाने बिना शासन नही चल सकता। प्रशंसाके कोलाहलमे निन्दाके स्वर मेरे द्वारसे निराश न लौट जायँ, इसलिए तुम्हे नियुक्त कर रहा हूँ दुर्मुख ! प्रजाको विश्वास होना चाहिए कि राम उनकी भावनाका आदर करता है। बड़े-से-बड़ा त्याग प्रजाके सुखके लिए राम कर सकता है। महाराज रामचन्द्रके लिए कुछ भी अदेय नही, प्रजा सन्तुष्ट हो।

[रामका प्रवेश, दुर्मुखका अन्तिम वाक्य सुन लेते हैं। उनके हाथमें सीताका एक चित्र है, उसे छोटी चौकीपर रखते हुए कहते है।]

राम : सन्तोष ? हा-हामयी आँधीके वेगसे पूछो दुर्मुख, सब कुछ विध्वंस करके भी उसे कभी सन्तोष हुआ है ? दावानलकी ज्वालासे पूछो, सन्तोषकी परिभाषामे वह कभी बँध पाई ?

दुर्भिक्ष, महामारीसे पूछो, निरपराध प्राणोंसे अहोरात्रि चलनेवाला उसका खेल कभी सन्तुष्ट हुआ ? प्रलयकरी बाढ़से पूछो दुर्मुख, सब कुछ अपने पेटमें समेटकर भी उसकी प्यास शान्त हुई ?···जनताकी कृतघ्नता सीमा नहीं जानती दुर्मुख !

दुर्मुख : [**अभिवादन करके**] लेकिन जनताकी कृतघ्नताका उत्तर देना आपके लिए आवश्यक क्यों हो महाराज ?

राम : तब राम राजा क्यों बना था ? दूसरोकी आलोचना करना सहज है दुर्मुख, अपनी ओर देखना कठिन है। जनताकी आलोचना रामके लिए उपेक्षाकी वस्तु नही है। सीताका परित्याग रामके लिए असाध्य है। किन्तु कायर बनकर राम उससे विमुख हो जाय, यह भी तो उसकी मर्यादाका अपमान होगा ! नही दुर्मुख, तुमने रामके कर्त्तव्यको जगाया है, वह तुम्हारा ऋणो है !····सीता जा रही है, रामका मनुष्यत्व चिर-निद्रामे सोने जा रहा है किन्तु उसके कर्त्तव्यकी ज्योति-शिखा अमन्द जलती रहेगी।

दुर्मुख : महाराज !

राम : [**करुण स्वर**] हाँ दुर्मुख, रामके यशकी ज्योतिशिखा भविष्यके अन्धकारमे भी अमन्द जलती रहेगी····सुन रहे हो रामके जीवन-बीनकी वह मन्द होती हुई रागिनी ? देख रहे हो उसका वह टूटता हुआ स्वप्न ? अब तो कहीं कुछ नहीं है दुर्मुख !

दुर्मुख : सब कुछ है महाराज ! सूर्यवंशके प्रतापी राजकुलका स्वप्न कभी नहीं टूट सकता। मुझे क्षमा करदे। [**भाला उठाकर**] मेरे हृदयका रक्त आपके जीवनको सरस बना दे स्वामी !

[**भाला पाँवके पास रख देता है।**] मुझे मार डालिए। उठा लीजिए शस्त्र ! [**फूट-फूटकर रोने लगता है।**] मेरा प्रायश्चित्त यही होगा प्रभो !

राम : [**कठोर स्वर**] कर्त्तव्यका पथ दया और क्षमाके जलसे पंकिल करना चाहते हो दुर्मुख ? रामकी कोमलतासे खेलना चाहते हो ? [**भाला पाँवसे हटाकर खड़े हो जाते हैं।**] गुप्तचर अवध्य होता है।····[**करुण स्वर**] क्षमाकी आवश्यकता तो रामको है, प्रायश्चित्त तो जीवन भर रामको करना होगा।····[**स्वाभाविक स्वर**] जाओ दुर्मुख, घर जाओ। अपने भगवान्से रामके लिए करुणा-याचना करो। जाओ।

दुर्मुख : लेकिन मेरा अपराध ··

राम : [**बात काटकर**] मेरा आदेश अमान्य नही होता दुर्मुख ! जाओ।

[**दुर्मुख विवश भावसे अभिवादन करके जाता है। राम घूमकर वातायनके पास जाते है।**]

राम : [**बाहरकी ओर देखते हुए**] अकल्याणका धूमकेतु उदय हुआ है। अमगलका लाल-लाल धूमकेतु। प्रकृतिके स्वरोमे मरण-कल्लोल जाग उठा है। अग्निमुखी भैरवी रात्रि, प्रलयके उद्दाम तालसे कण्ठ मिलाकर, नृत्य कर रही है। दूर, दिगन्तकी सीमापर रघुकुलका आनन्द, दुर्बल, जर्जर, म्रियमाण छाया-सा मिटता जा रहा है। अनन्त विश्व ब्रह्माण्डका अणु-अणु, कण-कण भैरव अट्टहास कर रहा है। रामके हृदयकी शोणितधारामे स्नानकर विधाताकी यह सृष्टि आज रक्तमुखी सुन्दरी-सी किलक उठे ।

[**करुण रागिनी बज उठती है। राम सहसा ही चौंक कर—**]

कौन ?····कौन है वहाँ ?···किसकी छाया है यह ? कोई नहीं ? [**विवश हँसी**] अरे, यह तो तुम्हारी ही पाषाण-मूर्ति है राम ! करुणाहीन, क्षमाहीन, दयामाया-ममता-विहीन तुम्हारी ही कर्त्तव्यनिष्ठुर मूर्ति है यह तो ! अपनी ही छायासे डरने लगे ? अपने ऊपर अविश्वास ?

लक्ष्मण : [**प्रवेशकर**] कैसा अविश्वास भैय्या ?

राम : [**प्रकृतिस्थ होकर**] कुछ नही लक्ष्मण ! कुछ नही ! पागलका प्रलापमात्र ! माँ स्वस्थ हो गई न ?

लक्ष्मण : उनकी मूर्च्छा दूर हो गई है। किन्तु भैय्या, एक बार फिर सोच लीजिए, भाभीका चरित्र निष्कलक है। निर्दोषी-का दण्डभोग विधातासे सहन नही होगा।

राम : चाँदनीको अपनी उज्ज्वलताका प्रमाण चाहिए लक्ष्मण ? फूलको अपनी सुगन्धके लिए साक्षी देना होगा ? भगवान्की प्रतिमा अपनी पवित्रताके लिए परिचयकी अपेक्षा रखेगी ? सीताका चरित्र मेरे निकट प्रश्न कब बन गया लक्ष्मण ?

लक्ष्मण : तभी तो कहता हूँ भैय्या, उनका घरसे निर्वासन····

राम : [**तीव्र स्वर**] निर्वासन ? घरसे निर्वासन ? ईट-पत्थरके इस घरको ही उनका घर कहते हो लक्ष्मण ? [**सहसा ही लक्ष्मणका हाथ अपने वक्षपर धरकर**] सीताका निवास यहाँ है भैय्या। यहाँ है उनका घर ! सुन रहे हो कुछ ? देख रहे हो, यहाँ कैसा उन्मत्त ताण्डव चल रहा है ? सीता सती-असती, पवित्र-अपवित्र कुछ नहीं है, वह एकमात्र

मेरी है। इतना ही क्या पर्य्याप्त नही है लक्ष्मण ! जागृत देवीकी भाँति मन-मन्दिरमे उसकी मूर्ति अहोरात्रि मेरी पूजा पाती रहेगी।'' 'ना ना लक्ष्मण, प्रेमकी देवी, पुण्यमयी सीता युग-युगान्त तक रामके हृदयमे अवस्थित रहेगी। उस पवित्रताको रामसे छीन लेना किसीके लिए सम्भव नही है लक्ष्मण ! किसीके लिए सम्भव नही है।

[**नेपथ्यसे पाठके स्वर आते हैं—"जानामि चैनामनघेति किन्तु लोकापवादो बलवान् मतो मे। छाया हि भूमेः शशिनो मलत्वेनारोपिता शुद्धिमतः प्रजाभिः ॥"**]

लक्ष्मण : यह बडा कठोर काम है भैय्या ? इसका परिणाम क्या होगा ?

राम : [**चित्रके नीचे जाकर**] अयोध्याका राज्य एक मधुर स्वप्न-की भाँति पलभरमे नष्ट हो जायगा। सृष्टिमे अन्धकारका दिगन्तव्यापी साम्राज्य होगा। रघुवंश विधाताके अभि-शापसे जल जायगा। ब्रह्माण्डका ध्वस हो जायगा भैय्या। रामका पाप समूची सृष्टिको खा जायगा। वज्रमेघके भैरव कोलाहलमे धरतीकी साँस घुट जायगी।

लक्ष्मण : तब भी यह असाध्य-साधन करना होगा ? लंकामे भाभीकी परीक्षा लेकर आपको संतोष नहीं हुआ ?

राम : मेरे सन्तोषका प्रश्न नहीं है भैय्या। प्रजाका सन्तोष चाहिए। मै राजा हूँ न—महाराज ! मेरा सुख-सन्तोष प्रजाके सुख-सन्तोषसे बड़ा नहीं हो सकता।

लक्ष्मण : एक धोबीका परिवार प्रजाका एकमात्र प्रतिनिधि नही है भैय्या। प्रजाके कोटि-कोटि कण्ठोसे अपनी महारानीका जयघोष निकल रहा है। उसे नहीं सुना आपने ?

राम : प्रशंसाके उस कोलाहलमे निन्दाका एक क्षीण स्वर क्या अनसुना रह जायगा लक्ष्मण ! क्या चाहते हो तुम लोग ? राम उस स्वरकी ओरसे कान बन्द करले ? लोकापवादकी शक्ति अद्भुत होती है। एक दिन उसका दिगन्तव्यापी विस्तार देखकर स्वय अपनी आँखे आश्चर्यसे विस्फारित रह जाती है ।

लक्ष्मण : भाभी गर्भवती है भैय्या। ऐसी स्थितिमे वनमे उनका निवास···

राम : [**व्यर्थ मुसकिरानेकी चेष्टा करते हुए बात काटकर**] उचित नही होगा यही न ? किन्तु उस मंगलमयीके अमगल-की आशंका ही क्यो करते हो लक्ष्मण ? रामका प्रेम रक्षा-कवच बनकर उनके साथ रहेगा। वनके सूखे, नीरस, उदास जीवनमे भी रामकी कल्याण-कामना उनके साथ रहेगी, सीता रामके स्नेह-व्यूहसे बाहर नहीं जा सकती। [**आँधीकी गतिसे भरतका प्रवेश, क्रुद्ध स्वर—**]

भरत : कुछ भी कहिए भैय्या, यह काम नहीं हो सकता। यह असम्भव है । मै ऐसा नही होने दूँगा ।

राम : [**चौकीपर बैठ जाते हैं, कठोर स्वर**] भाइयोंसे विद्रोहके स्वर सुननेका रामके लिए यह पहला ही अवसर है। कौन-सा काम असम्भव है भरत ? क्या नहीं होने दोगे ?

भरत : भाभीका वनमें निर्वासन । उनका अयोध्या-त्याग ।

राम : कर्त्तव्यके हाथ कठोर तो होते ही है भरत, उसमे आश्चर्य क्या है ? शासन आँसुओंके पथपर नही चलता। वह तो बड़ा निष्ठुर कार्य है ।

भरत : तो फिर शासक रामके लिए अपनी पत्नीका परित्याग भी असाध्य नहीं है ?

राम : शासक रामके लिए प्रजाकी इच्छा सर्वोपरि है। साध्यका प्रवेश द्वार तो रामके लिए बन्द हो चुका है। अमृत पी लेना सहज है किन्तु विषको निर्विकार भावसे कण्ठके नीचे उतार लेनेवाले देवाधिदेव शंकर ही है।

भरत : लेकिन यह विष बहुत तीखा है भैय्या! कैसे इसका पान करोगे ?

राम : [**चौकीसे उठते हुए, रुद्ध कण्ठ**] और उपाय क्या है ? [**सीताका चित्र चौकीपर से उठाकर**] यह विष सहज भावसे पीनेका बल तुम्हीं तो दोगी, मेरे हृदयकी शक्ति ! मेरी प्रेरणा, जीवन-संगिनी, तुम्ही तो रामको राम बनाओगी ! बोलो रामकी हृदयेश्वरी, राम अपने कर्त्तव्य-पथसे विमुख हो जाय ? यशके गौरव-शिखरसे उसका अध.पतन तुम्हे सहन होगा ? गुरु वसिष्ठको दिया हुआ अपना वचन वह लौटा ले, यही तुम चाहतो हो ? बोलो··· बोलो सीते !····[**कुछ क्षणों बाद प्रसन्न स्वर**] सुना भरत, देवी क्या कह रही है। सुना लक्ष्मण तुमने, सीताने क्या कहा ? [**कोई नहीं बोलता, सब रामकी मुद्रापर स्तब्ध हैं।**] किसीको रामसे सहानुभूति नहीं है देवी ! [**चित्र रख देते हैं।**] राम अपने पथपर अकेला चल पडा है। अकेला, निस्संग ! उसकी यात्राका साथी कोई नही।

लक्ष्मण : [**प्रसन्न**] तब क्यों यह निर्यातन बन्द नही कर देते भैय्या ? अब भी समय है।

राम	: कर्त्तव्यके असिधारा-पथपर बढनेका संकेत मुझे कौन दे रहा है ? सीता ही तो ? तुम्हे उसकी पुकार नही सुन पडती ? बिना जानकीका संबल पाये राम यह असाध्य-साधन कर सकेगा, तुम्हे विश्वास है ?

लक्ष्मण	: तो फिर सर्वनाश होकर ही रहेगा ?

राम	: रघुकुलमे मेरा जन्म हुआ है, यह क्या भूल जाऊँ मै ? वृद्धावस्थाकी तपस्या और साधनाके परिणाम, अपने दोनो नयनोंकी ज्योति दोनो पुत्रोको स्वर्गीय पिताजीने निर्मम भावसे वन भेज दिया था। क्यों भेजा था लक्ष्मण ? उनके हृदयका स्पदन क्या उस दिन एकबारगी ही बन्द नही हो गया था ? मरणके निर्दय हाथ क्या उन्हे समेट नही ले गये ? बोलो भरत, वह दिन क्या भूल गये ?

भरत	: वह क्या भूलनेकी बात है भैय्या ?

राम	: किन्तु माँको दिया हुआ उनका वचन अटल रहा। कर्त्तव्य अपने स्थानपर अडिग रहा। माता कैकेयीको दिया हुआ वर उनके जीवनका अभिशाप बन गया किन्तु उन्होंने वीर-दर्पके साथ कर्त्तव्यका निर्वाह किया। सीताका परित्याग बड़ा हो जायगा और महाराज दशरथका त्याग कोई मूल्य नही रखता ? कर्त्तव्यके पथपर फूलोका पराग ही नही होता भरत ! थकानका स्वेद भी होता है।

लक्ष्मण	: राज्यका कल्याण राजाका धर्म है भैय्या। वह प्रजाके लिए अपने प्राण दे सकता है। लेकिन महारानी तो राजनीतिसे अछूती है ? वह तो आपकी पत्नी हैं !

राम	: और तभी तो उनके कन्धोंपर दण्डका भार पड़ रहा है। ऐसा ही तो होता है, यही तो जीवनका क्रम है। हमारा

कौन-सा अपराध था लक्ष्मण ? चौदह वर्ष तक वनमें भटक कर हम माँके अपराधका दण्ड पा रहे थे न ? कुम्भकर्णको मारकर मैंने उसे किसके अपराधका दण्ड दिया था ? बोलो, बालि का वध किस अपराधके कारण हुआ ? किसके अपराधका दण्ड किसके ऊपर जाकर पडेगा, यह विचार करनेकी क्षमता किसमे है ?

भरत : तब तो अपराध कुछ है ही नही भैय्या ! पाप-पुण्य, अच्छा-बुरा, उचित-अनुचित सब व्यर्थ है। तब कौन-सा सत्य मानवको जीवित रखेगा ?

राम : मानवको जीवित रखेगा मानवका अहम्। अहिसाकी परिधिमे जीवहत्या पाप है किन्तु लंका-विजयके लिए अनगिनत मनुष्य तुमने कालके कराल गालमें झोक दिये। उसे भी पाप कहोगे ?....पाप-पुण्य, उचित-अनुचित, यह सब मनुष्य के विधान है भैय्या। एकका पाप दूसरेके लिए पुण्य बन जाता है। मनुष्यके मनका विचार बड़ा कठिन है।

[**शत्रुघ्नका प्रवेश**]

शत्रुघ्न : भैय्या, माता कौशल्याके पाससे भाभीका चित्र कौन उठा ले गया ?

राम : चित्र क्या होगा शत्रुघ्न ?

शत्रुघ्न : मूर्च्छासे उठनेके बादसे ही वह उस चित्रके लिए व्याकुल है। कह रही है, किसका साहस है जो मेरी बहूको मुझसे छीन ले ! उनकी वह क्रोधकी मूर्ति आपने देखी नही भैय्या ! दास-दासी सब भयसे काँप उठे है। आपने देखा है वह चित्र ?

राम : [**चित्र उठाकर देते हुए**] ले जाओ चित्र शत्रुघ्न ! प्रमादवश मै उठा लाया था ।

शत्रुघ्न : यही तो अब उनके जीवनका आधार होगा भैय्या । भाभी-के बिछोहका दारुण आघात उनसे सहन नही होगा । यह चित्र ही उनके घायल मनको सुहलाकर शान्त करेगा ।

[**चित्र लेकर जाते हैं ।**]

भरत : इसी दिनके लिए मैने चौदह वर्षो तक आपकी खड़ाऊँ राजसिहासनपर रखकर राज-काज चलाया था भैय्या ? इसी दिनके लिए ?

राम : पश्चात्ताप होता है भरत ?

लक्ष्मण : आपकी एकान्त भक्तिने हाथ बॉध रखे है भैय्या, नही तो इस कलकसे लक्ष्मण अपने हाथ काले न करता !

राम : तब फिर ले लो यह सब राज-पाट भरत ! मुझे नही चाहिए यह राजमहल, नही चाहिए अयोध्याका रिक्त राज-सिहासन ! मुझे मेरी सीता लौटा दो । मै उसे लेकर चला जाऊँगा दूर, कही दूर जहॉ सशयकी छाया न हो, सन्देह जहॉका नियम न हो, लोकापवाद जहॉकी सॉसमे घुलकर उसे विषाक्त न बनाता हो । [**करुण स्वर**] इस अगौरव-पूर्ण मिथ्या गौरवने मेरे हृदयको पाषाण-खण्ड बनकर कुचल दिया है लक्ष्मण ! इस लौह-शृङ्खलामे मेरे मनको जकड़कर पगु कर दिया है तुम लोगोंने ! रामने कब मॉगा था यह सब ? इस झूठको वरण करनेकी इच्छा रामने कब की थी ? [**कण्ठावरोध हो जाता है ।**] मेरे मौन एकान्त हृदयको चीरकर जो हाहाकार निकल रहा है उसे कौन सुनेगा ? सब देखते है रामका संयम, सबको चाहिए

रामका कर्त्तव्य। प्रजाको चाहिए रामकी हिमालय-सी दृढता। राम असाधारण है, वह महाराज है। नही भैय्या, रामको मनुष्य बनकर जीने दो। इस यातनासे उसे छुटकारा दो। [**माला आदि सम्मान-चिह्न उतारने लगते हैं।**]

भरत : [**हाथ पकड़कर**] ऐसा नही होगा भैय्या, ऐसा कठोर दण्ड हमे मत दीजिए! अयोध्याका सिहासन राजाके बिना सूना रहेगा। यह नही हो सकता। [**पॉव पकड़ लेते है।**]

लक्ष्मण : [**पास जाकर**] विचलित न हो भैय्या। आवेशने हमें अन्धा बना दिया। हम आपके निकट अपराधी हो सकते है, अयोध्याकी प्रजा तो रामको ही अपना राजा मानती है। आपके इस निश्चयसे उसपर वज्र गिर पडेगा।

राम : तो मै क्यो चिन्ता करूँ लक्ष्मण? विरोध और विद्रोह रामको कर्त्तव्यसे विमुख कर देगे। प्रजाका वज्र राम खुली छातीपर झेल सकता है किन्तु भाइयोकी यह घृणा वह कैसे सहेगा? उसे जाने दो न, प्रजा अपने नये राजाका अभिषेक देखे। मेरी मुक्तिका द्वार खोल दो।

भरत : हमारे शवोपर पाँव रखकर आप जा सकते है भैय्या! है इतना साहस?

लक्ष्मण : शक्तिवाण लगनेसे लक्ष्मणकी मृत्यु नही हुई किन्तु अपने ही हाथो गला घोंटकर मर जाना लक्ष्मणके लिए सहज है भैय्या! देखेंगे वह दृश्य? वचन दीजिए कि स्वप्नमे भी रामके बिना अयोध्याकी कल्पना सम्भव न हो।

[**सहसा ही नेपथ्यमें—"यही मेरा प्रायश्चित्त है माँ, यही मेरा पुरस्कार है।" के स्वर और एक कराहका स्वर**

सुन पड़ता है। सब लोग चौक जाते हैं। "मैं देखता हूँ"—कहकर भरत तेजीसे निकल जाते हैं। केवल राम अविचलित भावसे अग्निशुद्धि वाले चित्रके नीचे जाकर खड़े हो जाते है। तीव्र करुण रागिनी वाद्ययन्त्रोंपर बज उठती है।]

शत्रुघ्न : [**प्रवेशकर**] दुर्मुखके रक्तसे धरती लाल हो गई है भैय्या !
[**राम केवल घूमकर एक बार देख लेते हैं, बोलते नहीं।**]

लक्ष्मण : रक्त ? दुर्मुखका रक्त ?

शत्रुघ्न : कौशल्या-माँ से रो-रोकर दुर्मुख अपने अपराधकी क्षमा माँगने लगा। कहने लगा, पापकी आगसे उसका तन-वदन झुलस रहा है। माँकी क्षमा उसे शीतल कर देगी। राम, लक्ष्मण, भरत, भाभी उर्मिला, किसीने उसे क्षमाकी भीख नही दी। देवी सीताकी शरणमे जानेका साहस वह कैसे करे ?

राम : [**वैसे ही**] उस दयामयीके पास उसे अवश्य क्षमा मिल जाती शत्रुघ्न !

शत्रुघ्न : माताने उपेक्षासे मुँह फेर लिया। दुर्मुखने हताश होकर वही धरतीपर माथा फोड़ लिया। रक्तकी धारा बह निकली। वह मूर्छित पडा हुआ है।

राम : [**वहींसे**] देखा लक्ष्मण ! किसके अपराधका दण्ड किसको मिला ? दुर्मुखका कौन-सा अपराध था ? जाओ भैय्या, उसका उपचार अच्छी तरह हो।

लक्ष्मण : [**विवश भावसे**] जा रहा हूँ। [**जाने लगते हैं।**] वचन दिया न भैय्या ?

राम : प्रभातकी किरणें धरतीपर उतरना चाहती हैं लक्ष्मण ! देवी सीताकी तपोवन-यात्रामें विलम्ब न हो।

[**लक्ष्मण एक क्षण रुककर देखते हैं, फिर बाहर जाते है।**]

राम : [**वातायनसे बाहर देखते हुए**] यह सब क्या हो रहा है प्रभो ? क्या इसी दिनके लिए राम चौदह वर्ष बाद अयोध्या आया था ? निष्ठुर, निर्मम, निर्दय भावसे सीताको निर्वासनका दण्ड देनेवाला यह पापी मन खण्ड-खण्ड क्यों नही हो जाता भगवती ?... 'किन्तु समाजकी मर्यादा व्यक्तिके सुखसे बड़ी वस्तु है। प्रजाकी इच्छा राजाके लिए अतर्क्य है। सीता कौन है, मै कौन हूँ ? समाजसे ऊपर व्यक्ति नही होगा। समाजके चरणोमे व्यक्तिके सुख-सन्तोषकी बलि चढ़ेगी। व्यक्तिके निजत्वके रक्तसे ही समाजके मुँहकी लाली रहेगी। राम अपने हृदयपर पत्थर रखकर भी इस महासत्यकी प्रतिष्ठा करेगा। माँ; शक्ति, भगवती, रामको बल दो। सीताकी यात्रा मंगलमय करो वरदानी ! तुम्हारे चरणोंमे राम विनत है कल्याणी !

[**गिरती-पड़ती, विकल भावसे कौशल्याका प्रवेश। उर्मिला उन्हें सम्हाले हुए हैं। रामने वातायनकी देहरीपर माथा टिका दिया है। नेपथ्यमें दूर किसी मन्दिरमें घड़ी-घंटा बज रहे हैं।**]

कौशल्या : [**विक्षिप्त भावसे**] कहाँ है राम ? कहाँ है मेरा लाल ? मै उसे एक बार देखना चाहती हूँ। उससे पूछना चाहती हूँ,

मेरी बहूने उसका क्या बिगाड़ा है। छोड़ दे मुझे, मैं अपने रामके पास जाना चाहती हूँ। छोड़ मुझे उर्मिला !

[**उर्मिला छोड़ देती है। राम माताके स्वरपर चौंकते है और दीर्घ निःश्वास छोड़ते है।**]

राम : तो वह घड़ी आ गई राम ! मन्दिरमे पूजा आरम्भ हो गयी, देवी सीताकी यात्राका मुहूर्त अब टल नही सकता। [**अपनेको सम्हालकर**] माँ, माता····तुम्हारा अपराधी राम तुम्हारे सामने है माँ ! दण्ड दो उसे !

[**जल्दीसे आगे बढ़कर माँसे लिपट जाते हैं और आँसू बहने लगते हैं। कौशल्या वात्सल्यसे गद्गद उन्हें बाहोंमें समेट लेती हैं। उर्मिला एक ओर हटकर स्वयं आँसू पोंछने लगती हैं।**]

कौशल्या : रामभद्र, मेरा लाल, मुझ विधवाका सर्वस्व ! तुझे दण्ड दूँगी ? मै दण्ड दूँगी ? मै ? [**रामके शरीरपर स्नेहसे हाथ फेरने लगती हैं, फिर सहसा ही उन्हें अलग कर, जाकर चौकीपर बैठ जाती है।**] हाँ, तुझे दण्ड दूँगी। तूने अपराध किया है। [**हाथ फैलाकर**] आ तो यहाँ... [**राम पास जाते हैं, उन्हें गोदमें भर लेती है।**] क्यों तूने यह खेल किया, बता तो ! अब तो तू बड़ा हो गया है मेरे लाल, तुझे क्या अब ऐसा खिलवाड़ अच्छा लगता है ?

राम : खेल ? कैसा खेल माँ ?

कौशल्या : अयोध्याका राजमहल तेरे खेलकी गूँजसे भरा है बेटा ! सबके मनमें आशंका भर गई है कि कहीं यह झूठ सच न हो जाय। सबकी वाणीमें सन्देह बोल रहा है। दुर्मुखने

अपना माथा फोड़ लिया। केवल मेरी बहू चुप है, शान्त-निर्विकार। इस आँधीसे केवल वही अछूती है।

राम : सीता जानती है माँ, कि राम कभी झूठ नही बोलता।

कौशल्या : लेकिन मै तो जानती हूँ कि यह झूठ है। मुझसे भी छल करेगा तू? इसी आँचलकी छायामे लोटकर तू बड़ा हुआ है रे, मै तुझे नही जानती? राम सीताका त्याग करेगा? तीनों कालमे ऐसा सम्भव है कभी?

उर्मिला : [**सलज्ज**] माँकी ममता विश्वास नही करना चाहती आर्यपुत्र!

कौशल्या : [**मीठे क्रोधसे**] तू जा उर्मिला, बहूके पास! उससे कह दे, राम ऐसा नही करेगा। सब दास-दासियोसे कहला दे, वह प्रसन्न हो। यह सब मेरे रामका खेल था।... अरे, तू गई नही अभी? जा न, कह दे सबसे कि खेल समाप्त हो गया। अच्छा ठहर, मै ही चलती हूँ। [**उठने लगती है।**] बहूको मेरे पास बुला। चल। [**उठ जाती हैं।**]

उर्मिला : इस खेलकी कठोरता तुम नही समझोगी माँ। तुम बैठो, मैं जीजीके पास जाती हूँ।

[**उर्मिलाका आँसू पोंछते हुए प्रस्थान**]

राम : [**हाथ पकड़कर कौशल्याको बिठाते हुए**] यह खेल नही है माँ, कटु सत्य है। सीताका परित्याग रामका कठोर कर्तव्य है।

कौशल्या : [**साश्चर्य**] सत्य है? सीताका ~~परित्याग सत्य~~ है। राम! कहता क्या है रे?

राम : सच कहता हूँ माँ ! महाराज रामचन्द्रकी प्रजा महारानी सीताका परित्याग चाहती है। रावणकी लंकामें रह चुकनेके बाद प्रजा सीताके चरित्रको प्रश्नकी दृष्टिसे देख रही है माँ !

कौशल्या : तो उस व्यर्थ प्रश्नका उत्तर हमे देना होगा ? तुझे क्या स्वयं उसके चरित्रपर विश्वास नही है बेटा ? भयकर आगमेसे भी वह अछूती निकल आई, प्रजाको इस परीक्षा पर भी सन्तोष नही है ?

राम : नही है माँ ! प्रजा उनका परित्याग माँग रही है ।

कौशल्या : [**सतेज खड़ी होकर**] कल प्रजा तेरे माताकी कोखमे लात मारना चाहेगी, करने देगा ऐसा उसे ? प्रजा कहेगी, सूर्यको पृथिवी पर उतार ला, करेगा ऐसा ? प्रजा चाहेगी, अयोध्यामे आग लगा दे, सरयूमे जलके स्थानपर रक्तकी धारा बहा दे, कर सकेगा ऐसा ? प्रजाकी इच्छापर महारानी लुटेगी ? यही क्या तेरी राजनीति है ? यही क्या तेरी मर्यादा है ? यही क्या तेरा न्याय.... [**क्रोधसे कॉपने लगती हैं ।**]

राम : कुलगुरु वसिष्ठका ऐसा ही आदेश है माँ ! उसे अमान्य करनेको कहती हो ? रामको तुम दुर्बल न बनाओ माँ, उसे तुम्हारा बल चाहिए ।

कौशल्या : वसिष्ठका आदेश... लेकिन तप और वैराग्यसे बूँद-बूँद करके उनके हृदयका रस निचुड़ गया है राम । वह तो कठोर, निष्ठुर, जड़, पत्थर हो चुका है । वह पति-पत्नीके मनकी व्यथा क्या जानें ! नर-नारीका प्रेम उनके चिन्ता-क्षेत्रसे बाहर है ! उनकी पोथियोमें माँके हृदयकी भाषा नहीं लिखी है लाल !

[**निर्विकार भावसे, धीर पगोंसे सीताका प्रवेश। कौशल्याको देखकर आँचल तनिक माथेपर खींच लेती हैं।**]

कौशल्या : सुनती हो बहू, वसिष्ठके आदेशपर, प्रजाके कहनेसे राम तुझे घरसे निकाल रहा है। ऐसा कहीं हुआ है बेटी? कही सुना है तूने?

सीता : [**अविचलित**] सवेरा हो रहा है माँ, प्रणाम करने आई हूँ। [**पात्रोंके पास झुकती है।**]

कौशल्या : [**उठाकर**] जियो बेटी, जन्म-जन्मान्तर तक तुम्हारा सौभाग्य अटल रहे····अरे, [**सीताका मुँह ऊपर उठाकर**] तेरे मुखपर तो इस आँधीकी छाया भी नहीं है! इतना विष तू पी सकती है, चुपचाप!

[**राम उठकर वातायनके पास जाते हैं। प्रातःकालका प्रकाश धीरे-धीरे फैल रहा है। नेपथ्यसे पाठ सुन पड़ता है—**

"भवा मित्रो न शेव्यो घृतासुतिर्विभूतद्युम्न एवया उ सप्रथाः।
अधा ते विष्णो विदुषा चिदर्ध्यः स्तोमो यज्ञश्च राध्यो हविष्मता ॥१॥
यः पूर्व्याय वेधसे नवीयसे सुमज्जानये विष्णवे ददाशति।
यो जातमस्य महतो महि ब्रवत्सेदुश्रवोभिर्युज्यं चिदभ्यसत् ॥२॥]

कौशल्या : [**खड़ी होकर**] मेरी पूजाका समय हो गया। मन्दिरमें वेदपाठ आरम्भ हो गया। मै जाती हूँ बेटा, पर तुझे मेरी

शपथ है, मेरे आँसुओंकी शपथ है, बहूपर यह अन्याय न करना। तुझे गोदमे रखकर कौशल्याने कष्ट सहा है लाल, वसिष्ठने नही। वसिष्ठका आदेश कौशल्याके आँसुओसे बड़ा नहीं हो सकता। गुरु मातासे श्रेष्ठ नही है बेटा! भीखके लिए फैला मेरा आँचल झटकार मत देना। सीता पवित्र है, मेघमुक्त आकाशकी तरह उसका चरित्र निर्मल है। उसपर अविश्वास मत करना। [**चली जाती हैं।**]

सीता : [**रामके पास जाकर**] महाराज!

राम : [**घूमकर**] वियोगकी वेलामें तुम भी व्यंग करोगी सीते? [**हाथ पकड़नेकी चेष्टा करते है।**] सबका तिरस्कार राम सह सकता है किन्तु तुम्हारी उपेक्षा....

सीता : [**हाथ छुड़ाकर**] मुझे छूना नहीं, मेरे शरीरके काजलसे तुम्हारे हाथ काले हो जायेंगे देवता! अकल्याणकी धूमशिखा-सी मै केवल तुम्हारे जीवनमे अन्धकार ही बिखेरने आई थी। मेरे चरित्रने तुम्हारी मर्यादाको बार-बार कसौटीपर रखा है स्वामी! अब यह अमंगलकी अमावस्या सदाके लिए दूर होने जा रही है। इक्ष्वाकुवंशका कलंक...

राम : [**जल्दीसे सीताका मुँह बन्दकर उन्हें हृदयसे लगा लेते हैं**] सीते! रामकी हृदयवल्लभे! [**करुण कण्ठ**] तुम तो ऐसा न कहो देवी! तुम्हारी प्रेरणापर ही तो राम प्रजाकी विष ज्वालासे खेलने चला था। तुम्हीं उसे दुर्बल बनाओगी? तुम्हारे काजलसे रामके हाथ काले हो जायेंगे? अकल्याणकी धूमशिखा?—कौन, मेरी सीता? क्यों नहीं आकाशसे वज्र फट पड़ता भगवान्? [**रोने लगते**

हैं] नहीं, ऐसा नहीं होगा। सीताका परित्याग नहीं होगा।

[**लक्ष्मणका प्रवेश**]

लक्ष्मण : सारथिने रथ द्वारपर लाकर खड़ा कर दिया है भैय्या!

राम : तुम भी चलो लक्ष्मण! अभी चम्पकारण्य चलना है, गुरु वसिष्ठके पास। उनका आदेश उन्हे लौटा देना होगा। सतीका परित्याग मुझसे न होगा। तुम लोग राज करो, प्रजा सन्तोषकी साँस ले। मैं अपनी सीताको लेकर चला जाऊँगा।

लक्ष्मण : यह सब आप क्या कह रहे हैं भैय्या? आपने वचन दिया था कि अयोध्याको अनाथ न करेंगे।

राम : कहता तो हूँ लक्ष्मण, महासती सीता मुझसे अलग नहीं हो सकती। सीतासे अभिन्न रामको लेकर प्रजा अयोध्याको कलंकरहित कैसे करेगी? प्रभातकी इस मंगल-वेलामें प्रजाको सूचना पहुँचा दो, सीताविहीन राम राजाकी शव-यात्रामें सम्मिलित होनेका सुयोग उसे नही मिलेगा। सीता-का प्रेम, कौशल्याकी शपथ विजयी हों, राम सीताका परि-त्याग नही करेगा।

लक्ष्मण : [**हर्षसे**] ऐसा ही हो देव! तो प्रजामें सूचना भेज दूँ? [**जानेको उद्यत**]

सीता : ठहरो लक्ष्मण! प्रजाने सम्मिलित स्वरमें मेरे परित्यागकी माँग नही की थी। [**रामके पास जाकर**] कर्त्तव्यके ऊँचे शिखरसे यह अधःपतन मर्यादापुरुष रामचन्द्रको शोभा नही देते। सीताके कारण तुम्हारी यह दुविधा

अनुचित है स्वामी ! सीताको क्या इतना अक्षम समझते हो ? तुम्हारे यश और मर्यादाके लिए सीता इतना-सा बलिदान भी नहीं कर सकती ? तुम्हारा उज्ज्वल जीवन सदा गौरवसे वन्दनीय रहेगा । रामकी मर्यादाका इतिहास सीताके कारण कलकित नही होगा । मलिन न हों । तुम्हारे पुण्यका सत्य जगत्के लिए आदर्श होगा । रामकी पूजा घर-घरमे होगी और उसके साथ ही मूल्य पायेगा मेरा मौन आत्मोत्सर्ग ! यही सीताका परिचय होगा ।

राम : [रोते हुए] किन्तु रामके जीवनमे धिक्कारकी होली सदा धू-धू कर जलती रहेगी । रामका परिचय क्या होगा देवी ? एक कायर जो मिथ्या निन्दासे डर गया । लोकापवादने जिसे भयभीत कर दिया । स्वार्थी, राज्यका भूखा यशअन्ध पापी जिसने पत्नीका परित्याग सहन किया किन्तु राज्यत्याग जो न कर सका । इस परिचयसे तुम प्रसन्न होगी देवी ?

लक्ष्मण : विलम्ब न करें भाभी, बहुत दूर जाना है । दण्डकारण्यमें ऋषि वाल्मीकिके आश्रममे ।

सीता : जानती हूँ भैया, चल रही हूँ । [रामसे] सीताके कारण तुम्हारे वंशकी पताका कभी लुठित न होगी आर्यपुत्र । मै पत्नी हूँ, पतिके सुखकी बाधक बनकर न रहूँगी । तुम कष्ट क्यों पाते हो ? मै तो स्वय तपोवन जा रही हूँ । हँसो स्वामी ! क्या विदाके समय भी तुम्हारी हँसी मुझे न मिलेगी ? तुम्हारी हँसीकी एक किरण ही मेरे अन्धकारपूर्ण यात्रापथको आलोकसे भर देगी । अच्छा, विदा दो आर्यपुत्र !

[पाँव छूनेके लिए झुकती हैं तभी दूसरी ओरसे उर्मिला आकर खड़ी हो जाती हैं। नेत्रोंमें आँसू हैं। एक ओरसे भरत और शत्रुघ्न आकर खड़े हो जाते हैं और अपने आँसू पोंछते हैं।]

सीता : [उठकर] चलो भैय्या लक्ष्मण। [आगे बढ़ती है।] अरे, उर्मिला बहन ! पागल है क्या तू ? सूर्यवशकी प्रतिष्ठा रखना हमारा काम नही है क्या ? [सरपर हाथ रखकर] यह रोना बन्द कर।

उर्मिला : [रोते हुए] मुझे क्या कहती हो बहन ? मुझे आशीर्वाद दिये जाओ—

सीता : रमणीके हृदयकी पीड़ासे विश्वको अवगत कराओ बहन। नारीके सम्मानका परिचय नरको दो। आशीर्वाद देती हूँ कि जब तक गगा-यमुनामे जल रहे तब तक तुम्हारा सुहाग अचल रहे।

[आगे बढ़ती हैं, उर्मिला आँचल पसारकर प्रणामकी मुद्रामें बैठ जाती हैं।]

सीता : [भरत और शत्रुघ्नको देखकर] तुम लोग भी रो रहे हो ? देखो, मेरी आँखोंमे तो आँसू नहीं है भैया ! मनुष्य होकर रोना—

राम : सीते !

भरत : आप क्या मानवी है भाभी ? तब फिर देवी किसको कहते है ? धरतीकी तरह इतना सहनेकी क्षमता और किसमे है ?

शत्रुघ्न : रघुकुलकी लज्जा छिपनेको स्थान नही पा रही है भाभी !

सीता : [**मुसकराकर**] धरती ही तो मेरी माँ है भैय्या भरत ! और शत्रुघ्न, रघुकुलकी लज्जा मुझे सौंप दो न ! मेरे पास वह सुरक्षित रहेगी। चलो लक्ष्मण—अरे, आर्यपुत्रका आशीर्वाद मुझे नहीं मिला। [**जल्दीसे रामके पास जाकर बैठ जाती हैं, एक ओरसे कौशल्या पूजा समाप्त करके आती हैं। हाथमें डोलची है।**]

कौशल्या : पूजाके फूल लो तुम लोग।—अरे, यह तुम लोगोंको क्या हो गया ? सबके मुखोंपर यह काली छाया····

सीता : [**रामके चरणोंकी धूल माथेसे लगाकर उठते हुए**] अशान्ति-मूर्तिका अन्तिम प्रणाम स्वीकार करो आर्यपुत्र ! चलती हूँ। [**कौशल्याको देखती हैं। झुककर प्रणाम करती हैं, फिर उठकर**] चलो लक्ष्मण, माँके आँसू मेरे पावोंमे बेड़ी डाल देंगे। विदा अयोध्याके राजमहल ! विदा पुरजन-परिजन ! विदा जीवनके राग-रंग, यौवनके स्वप्न ! आज वन-गमनके समय सीता तुम सबसे अपने अपराधोंकी क्षमा माँग रही है। [**रो देती है, फिर बाहर निकल जाती हैं। पीछे-पीछे लक्ष्मण भी जाते हैं।**]

[**भरत और शत्रुघ्न भी आँसू पोछते हुए बाहर जाते हैं। कौशल्या एक क्षण निर्निमेष देखती रहती हैं, दूसरे ही क्षण पुकार उठती हैं—"तो यह खेल नहीं था वह ? भीखके लिए फैला मेरा आँचल····सीता !" हाथसे डोलची छूट जाती है और मूर्छित होकर गिर पड़ती हैं। उर्मिला सम्हालकर चौकीपर लिटाती है, राम भी सहारा देते हैं। राम उस ओर बढ़ते हैं जिधर सीता गई है, फिर द्वारके पाससे ही लौट आते हैं। करुण-रागिनी तीव्र**

हो जाती है। उर्मिला आँचलसे कौशल्याके मुखपर हवा कर रही है, राम आकर कौशल्याके पाँवोंके पास धरतीपर बैठ जाते हैं। उर्मिला खड़ी हो जाती है।]

राम : सुना उर्मिला, रघुवंशकी लज्जा मेरी सीताके पास सुरक्षित रहेगी। महासतीने सूर्यवंशके मुखकी लाली मिटने नहीं दी, उर्मिला! नारीकी निष्ठाने नरकी लज्जाको बिखरने नहीं दिया। किन्तु—[**वातायनकी ओर देखकर**] तुम तो हँस रहे हो अंशुमाली। देवगणकी घृणाका सन्देश लेकर आ रहे हो? रामके कण्ठकी ओर तुम्हारे अनल-कर बढ रहे है? ''नही नही भगवन्, दयाकी भिक्षा मुझे मत दो। मैंने एक पवित्र विश्वास, पुनीत प्रेमका गला घोंट दिया है, अनन्य समर्पणकी छाती क्षत-विक्षत कर दी है मैंने। हृदयके भीतर ज्वालामुखी धधका दो चण्डिके! अबाध यन्त्रणा दो मुझे! उष्णरक्तकी उत्तप्त वैतरणीमे स्नान करके मेरा पाप सदैव मुझपर अट्टहास करता रहे! एक क्षणको भी रामको स्वस्ति न मिले।—माँ, माँ—तुम्हारी शपथ भी मेरी कठोरतासे टकराकर लौट गई। तुम्हारे आँसू भी पत्थरको पानी नही कर सके। स्वार्थ ऐसा ही कठोर होता है माँ, मुझे क्षमा करो। [**पावोंपर लोटने लगते हैं।**]

उर्मिला : आर्यपुत्र!

राम : कुछ मत कहो उर्मिला! रौरवके दाह और श्मशानकी ज्वालासे भी भयकर इस दावामे रामको सुलगने दो। [**उठकर वातायनकी ओर भागते हुए**] मत जाओ सीता। रुक जाओ सीते! रामको तुम्हारी आवश्यकता

है। मत जाओ देवी। मत—जाओ। [हाथ उठाकर रोकनेकी मुद्रा। करुण-रागिनीके साथ यवनिका मिलती है। राम वातायनकी देहरीपर माथा टेक देते हैं। उर्मिला कौशल्याको सम्हालती है।]

दो

[दण्डकारण्यमें महर्षि वाल्मीकिका आश्रम। गर्भवती महारानी सीताको अयोध्याका परित्याग किये लगभग सत्रह वर्ष हो गये हैं और तबसे वह महर्षिके आश्रममें ही दिन व्यतीत कर रही हैं। अब उनकी दो सुन्दर वर्चस्वी सन्तान हैं, लव और कुश।

मञ्च पर, लगभग आमने-सामने, दो कुटियाँ बनी देख पड़ती हैं। पीछे वन-प्रान्तरकी पृष्ठभूमि है। दोनो कुटियोंके बीचमें, मञ्चकी गहराईकी सीमाके पास, यज्ञकुण्ड बना हुआ है। कुटियोंके पार्श्वसे आने-जानेका मार्ग है। कुटियों पर लता-गुल्मोंका आच्छादन है और दोनोंके आगे छोटे-छोटे बरामदे हैं। एक कुटीमें महर्षि स्वयं रहते हैं, दूसरीमें सीता अपने पुत्रोंके साथ रहती हैं। एक ओर अलगनीपर लव-कुशके गैरिक-वस्त्र पड़े हैं। महर्षिकी कुटीके बरामदेमें एक छोटी चौकीपर कुछ पुस्तकें और लिखनेका सामान देख पड़ता है, पास ही बाघम्बर बिछा है। उसके पास ही दीवटपर दिया जल रहा है।
मञ्चपर बहुत मद्धिम प्रकाश है, पृष्ठभूमिमें उषाके आगमनकी सूचना देनेवाला प्रकाश फैल रहा है। यवनिका धीरे-धीरे हटती है। समवेत स्वरोंमें, निम्नांकित पाठ सुन पड़ता है। दो-तीन बार आवृत्ति होती है।]

शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा ।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ।।

वाल्मीकि : [**लवके साथ प्रवेश करते हुए**] कुश अभी नही आया लव ?

लव : [**वाल्मीकिके पास आकर उलाहनेके स्वरमें**] आपने उसे बहुत सुकुमार बना दिया है महर्षि ! देखिए तो, इतनी अबेर हो गई और उसका स्नान समाप्त नहीं हुआ अभी ।

वाल्मीकि : [**बाघम्बर लपेटते हुए**] आता ही होगा । [**मुसकराकर**] सस्कार बहुत प्रबल होते हैं वत्स ! और साधनाका मार्ग बड़ा कठोर होता है ।

लव : कोमल मार्ग हमारे लिए कहाँ खुला है मुनिवर ? वनवासियोके सस्कार राजसी नहीं हो सकते। [**यज्ञकुण्डके पास जाता है ।**]

वाल्मीकि : [**बाघम्बर एक कोनेमें रखते है ।**] किन्तु राजसी सस्कारों पर वनवासियोंके सस्कार कैसे विजयी होंगे, बेटा ? [**करुण स्वर**] रामायणका प्रणयन करते समय तुम दोनोके वर्णन पर मेरी आँखें तमसाकी धारा बन गई है । आगे लेखनी चली नहीं ।

लव : रामायणका प्रणयन आपने कैसे आरम्भ किया देव ? क्या है उसमे ?

वाल्मीकि : वह कथा किसी दिन तुम लोगोंको सुनाऊँगा । [**इसी समय कुश स्नान करके गीले वस्त्र हाथमें और कन्धेपर लकड़ियोंका गट्ठर लिये आता है और पृथ्वीपर पटक**

देता है। फिर वस्त्र सूखनेके लिए अलगनीपर डालने लगता है। वाल्मीकि उधर देखकर अपनी बात कहते रहते हैं और कुश बीच-बीचमें उधर सुन लेता है।] तमसा नदीके तीरपर क्रौञ्च पक्षीका एक जोड़ा किलोल कर रहा था। व्याधके तीरने एक पक्षीको मार डाला। मुझे बडी व्यथा हुई लव, लगा कि वह वाण मेरे हृदयमे ही बिंधा है।

कुश : [**वहींसे**] व्यथाकी बात थी महर्षि ! जीवहत्या पाप है।

वाल्मीकि : हाँ कुश, किन्तु व्याधके पापकी परिभाषा दूसरी थी। मुझ जैसे अधम दस्युका हृदय भी जिस दृश्यसे टूक-टूक होने लगा, व्याधका वह केवल मनोविनोद था। मेरे मुँहसे सहसा ही निकल पड़ा—"मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगम. शाश्वती समा:। यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥"

लव : यह छन्द तो…

वाल्मीकि : हाँ, अनुष्टुप् छन्द है यह। उस समय सरस्वती मेरी वाणी पर उतर आई थीं वत्स ! उसी समय भगवान्‌का आविर्भाव हुआ और उन्होंने मुझे आशीर्वाद दिया—तुम्हे वाग्ब्रह्म-का साक्षात्कार हुआ है। अव्याहत, आर्ष दृष्टि प्राप्त हुई है तुम्हे। तुम आदि-कवि बनो, रामचरितका आख्यान विश्वके लिए सुलभ करो। तभी मैंने शब्दब्रह्मके अवतारभूत रामायणका प्रणयन आरम्भ किया बेटा।

कुश : मैं प्रस्तुत हूँ मुनिवर !

वाल्मीकि : तो चलो। [**बरामदेसे नीचे उतर आते हैं।**] पाठ समाप्त कर लिया जाय।

[सीता अपनी कुटीसे निकलकर बरामदेके खंभेसे लगकर खड़ी हो जाती है ।]

सीता : बेटा लव-कुश !

लव : माँ ! तुम स्नान कर आईं ?

वाल्मीकि : प्रातःकाल हो गया वत्स, माताको प्रणाम कर आओ।
[लव-कुश पहले वाल्मीकिको प्रणाम करने लगते है, वाल्मीकि रोक देते है ।]

वाल्मीकि : सीता तुम्हारी जन्मदात्री है। वाल्मीकि प्रणामका पहला अधिकारी नही हो सकता। माताका आसन गुरुसे ऊँचा है बेटा ।

सीता : [**जैसे कुछ स्मरणकर चौंक जाती हैं**] माताका आसन गुरुसे ऊँचा है ? कहते क्या है पिता ?

वाल्मीकि : आश्चर्य क्यों होता है बेटी ?

[लव-कुश आकर सीताका चरण-स्पर्श करते है, सीता उन्हें हृदयसे लगा लेती हैं ।]

सीता : [**करुण कण्ठ**] जियो मेरे लाल ! सीताका कलंक तुम्हारी हँसीको मलिन न होने दे। [**वाल्मीकिसे**] इन फूल-से राजकुमारोंको जंगलमे लकड़ी बीनते देखकर भी कह सकते हो पिता, माता गुरुसे बड़ी है ? राजमहलोकी रानीको आश्रमकी तप-कठोर सन्यासिनी बना दिया आप लोगोंने, अब भी कहते हो कि माताका आसन गुरुसे ऊँचा है ?

वाल्मीकि : बेटा लव, दण्डनीतिका वह सूत्र तुमने कण्ठस्थ कर लिया ? नहीं न ? अच्छा जाओ, याद कर डालो। मुझे यहाँ कुछ

काम है। कुश बेटा, धनुषकी प्रत्यञ्चा तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। प्रातःकालका अभ्यास अच्छा होता है।

कुश : चलो लव, हमलोग चले। पिता जब हटाना चाहते हैं तब ऐसा ही कहते हैं।

लव : चलो भैय्या। माँ, तुम भी चलो न हमारा अभ्यास देखने!

सीता : तुमलोग चलो, मै आती हूँ। [**लव-कुश चले जाते हैं।**] कबतक इन्हे भ्रममे रखोगे पिता? इन्हे बता दो न कि इनकी माता कलकिनी है। इनसे कह दो देव, कि यह उस नारीकी सन्तान है जिसे नरने हाथ पकड़कर घरसे निकाल दिया था। यह उस माँके अभागे लाल है जिसकी कोखमे पिताने लात मार दी थी।

वाल्मीकि : सीता! बेटी!

सीता : हाँ देव! इनके साथ कबतक छल करूँ? सीताका लुटा हुआ दर्प, छिना हुआ गौरव और मिटा हुआ आत्मविश्वास अब छलका बोझ अधिक नहीं सम्हाल सकेगा। माँकी वेदना संयमको खा जाना चाहती है पिता! नही जानती आँधीके इस वेगको कबतक रोक सकूँगी। एक दिन उन्मत्त प्रभंजनसे हारकर सब कुछ तोड़-फोड़ कर चल दूँ तो उस दिन मेरी विद्रोहिणी नारी सबकी घृणा सह लेगी। किन्तु तुम उसे अपनी करुणाका जल ही देना देव!

[सीता पुनः, जिस कुटीसे निकली थीं उसके, भीतर चली जाती है। मंचपर प्रकाश फैल गया है। वाल्मीकि दियाको हाथसे बुझा देते है और कहने लगते हैं—]

वाल्मीकि : उसदिन की प्रतीक्षा तो यह बूढा वाल्मीकि भी कर रहा है सीता। वाल्मीकिकी रामकथा तबतक अधूरी रहेगी। जबतक नारी-निर्यातनका इतिहास उसकी लेखनीसे सजीव नही हो उठता, उसे सन्तोष नहीं होगा। वाल्मीकिको नारीके अधिकारकी प्रतिष्ठा करनी है। नारीके आत्म-सम्मान और यशको समाजके मन-देशमें गौरवके आसनपर अधिष्ठित करना है। वह तुम्हारे ही माध्यमसे तो होगा बेटी! तुम हार मान लोगी तो ससारकी स्त्रियाँ लज्जा छिपानेको कही ठौर नहीं पायेंगी। [**पोथी-पत्र समेटने लगते हैं।**]

[**वासन्तीका प्रवेश। वाल्मीकिका अन्तिम वाक्य सुन लेती है।**]

वासन्ती : [**प्रणाम करके**] प्रणाम करती हूँ मुनिवर! आप कब आये?

वाल्मीकि : ओह, वासन्ती? अयोध्या क्या यहाँ है बेटी? कल बहुत रात गये लौटा।

वासन्ती : महाराज रामचन्द्र तो कुशलसे हैं न? सुना है, वह अश्व-मेघ यज्ञ करनेवाले है।

वाल्मीकि : चक्रवर्ती सम्राट् होनेकी इच्छा राजाका स्वाभाविक धर्म है। मै उन्हें आशीर्वाद देने गया था।

वासन्ती : अच्छा किया भगवन्! आपके आशीर्वादने सखी सीताकी रही-सही आशाका गला घोंट दिया। सीताकी लज्जा अब मरण-शैय्या तक उनके अचलसे लिपटी रहेगी। [**रोने लगती है।**]

वाल्मीकि : पागल न बनो वासन्ती। संसारकी कोटि-कोटि स्त्रियाँ सीताको देखकर अपनी मिथ्या लज्जा सहनेकी शक्ति पायेंगी। सीताने आशा ही कब की थी वासन्ती? उसने अन्यायके आगे घुटने नहीं टेके, अत्याचारके आगे माथा नहीं झुकाया, मिथ्याके आगे सत्यकी प्रतिष्ठाके लिए भीखकी झोली नहीं फैलायी। तभी तो वह इस रूखे-सूखे वृद्धका स्नेह पा सकी है बेटी। गृहत्यागी वाल्मीकि भी गृहस्थकी ममतासे चचल हो उठा है। [**करुण स्वर**] सीताका साधन-कठोर यौवन और लव-कुशका तपसे शुष्क बना बचपन मुझे एकबार फिर संसारकी ओर लौट जानेका संकेत देता है वासन्ती!

वासन्ती : [**उत्साहित**] तो फिर लौट चलिए मुनिवर! सीताको इस अगौरवसे बचाइए। महाराज रामचन्द्रके दूसरे विवाहसे सीताका हृदय खण्ड-खण्ड हो जायगा। यह आघात सीता कैसे सहेगी भगवन्?

वाल्मीकि : महाराज रामचन्द्रका दूसरा विवाह? यह तुमने कहाँ सुना वासन्ती? रामचन्द्र दूसरा विवाह करेंगे? सूर्य पश्चिमसे उदय होने लगेगा, आकाश धरतीपर आ रहेगा, चन्द्रमासे अमृतके स्थानपर आग बरसने लगेगी वासन्ती। अकल्याणकी उस घड़ीमे प्रलय हो जायगा। ऐसी अनहोनी घटना त्रिकालमे भी असम्भव है।

वासन्ती : क्षमा करें देव, पर विश्वास करनेको जी नहीं चाहता। किस क्षण कौन-सा असम्भव पुरुषके लिए सम्भव बन जायगा, हम अभागिनी नारी यह क्या जानें? हमारा काम तो पुरुषके पागलपनको दुलराते रहना है। चुपचाप, बिना

मुँह खोले, मार खाकर उन्ही चरण-कमलोंको सुहलाते रहना हमारा धर्म है।

वाल्मीकि : वासन्ती ! [**आँसू पोंछते हैं।**]

वासन्ती : हाँ पिता ! हमारा भाग्य पुरुषकी दयापर निर्भर है। नारीका सुहाग नरकी करुणा और उदारताके पावों तले सिर धुन-धुनकर मरता रहता है। [**करुण कण्ठ**] संसारमे निष्ठाका मूल्य क्या उपेक्षा ही है देव ? समर्पण क्या घृणासे ही भीख माँगेगा ? नारी क्या नरके अहम् पर बलिदान ही होती रहेगी ? महाराज रामचन्द्र जब सती-साध्वी सीताका इतना अपमान कर सकते है तब ससारके साधारण लोगोंको कैसे दोष दिया जाय ?

वाल्मीकि : पश्चात्तापमे राम पागल हो रहे हैं बेटी ! प्रायश्चित्तकी आगने उन्हे जला डाला है। तुम देखती वह मुख, नीलोत्पल-दलकी तरह खिले उस आननपर चिन्ता और ग्लानिकी छाया रात-दिन डोलती रहती है। उन्हे एक क्षणको भी शान्ति नही, उद्वेलित हृदयके अविराम वात्याचक्रने उनके जीवनकी सुख-शान्तिको उड़ाकर न जाने कहाँ दूर फेंक दिया है। मैंने तो अपनी आँखोसे देखा वासन्ती, पुरजन,परिजनसे भरेपुरे अयोध्याके उस राजमहलमे राम निरानन्द, अकेला जीवन बिता रहे हैं। लोगोंकी हँसी उनके मुखपर मुसकान नहीं लाती, लोगोका कोलाहल उनकी एकान्त समाधिमें बाधा नहीं लाता। उन्हे देखकर करुणा होती है।

वासन्ती : [**अविचलित**] चक्रवर्ती सम्राट्का जयघोष उनकी समाधि भंग करेगा मुनिवर ! अश्वमेध यज्ञके समय पार्श्वमे बैठी

दूसरी महारानी उनके एकान्त जीवनको फिर हँसी और सुख-शान्तिसे भर देंगी।

वाल्मीकि : फिर तुमने वही बात कही वासन्ती ? सीताके स्थानपर दूसरी रानी महारानी बनेगी ? ऐसा नही हो सकता।

वासन्ती : हो क्यों नही सकता ? जिस आसन परसे सीता तिरस्कारके साथ हटा दी गई उस आसनपर दूसरी नारी सम्मानके साथ प्रतिष्ठित भी तो हो सकती है। एकका विष दूसरेके लिए अमृत बन जायगा पिता। अयोध्याकी प्रजा प्रसन्न होगी, रामचन्द्रकी मर्यादाका यशगान ससारमे व्याप्त हो जायगा। [**कुछ सोचकर**] अश्वमेध यज्ञ बिना स्त्रीके सम्पूर्ण नही होता मुनिवर !

[एक ओरसे लव-कुश प्रवेश करते है, वासन्ती और वाल्मीकिको देखकर ठिठकते है, फिर सीताकी कुटीके भीतर प्रवेश कर जाते है। मंचपर प्रकाश पूरा फैल गया है।]

वाल्मीकि : मुझे भी यही सन्देह था बेटी।

वासन्ती : तो अब उस सन्देहको सत्य बनते देखिए पिता !

वाल्मीकि : वह दिन देखनेके पूर्व यह बूढा संसारसे उठ जायगा वासन्ती ! महाराज रामचन्द्र चक्रवर्ती सम्राट् होंगे, अश्व-मेध यज्ञ होगा किन्तु महारानी सीताके पवित्र आसनपर दूसरी नारीके अपवित्र चरण नही पडेंगे। महारानीके मर्यादाकी रक्षा होगी।

वासन्ती : [**साश्चर्य**] तब अश्वमेध यज्ञ होगा कैसे ? महाराज रामचन्द्रकी सहधर्मिणी इस यज्ञमें कौन होंगी ?

वाल्मीकि : रामचन्द्रकी सहधर्मिणी सीता ही तो होंगी वासन्ती। इतनी क्षमता और किसमें है ?

[इसी समय सीता अन्दरसे निकलती हैं, वाल्मीकिकी बात सुनकर चौंकती है, फिर बैठ जाती है।]

वासन्ती : **[सीताके पास जाकर]** सुनती हो सखी, पिताकी बातें ? महाराज रामचन्द्र अश्वमेध यज्ञ कर रहे हैं और उसमे उनकी सहधर्मिणी होगी तुम। है न हँसीकी बात ? कहाँ अयोध्या और कहाँ दण्डकवन ! कहाँ अयोध्याका राजमहल और कहाँ महर्षि वाल्मीकिका आश्रम। स्वप्न तो नही देख रहे हैं भगवन् ?

वाल्मीकि : स्वप्नमें भी वाल्मीकि मिथ्याका सहारा नहीं लेगा वासन्ती। अश्वमेध यज्ञमे महाराज रामचन्द्रकी सहधर्मिणी होगी महारानी सीताकी स्वर्ण-प्रतिमा।

[सीता चौंककर वाल्मीकिकी ओर देखती है, फिर वैसी ही निश्चल बैठी रहती है।]

वासन्ती : सीताकी स्वर्ण-प्रतिमा ? अश्वमेध यज्ञकी सहधर्मिणी ?

वाल्मीकि : कौन-सा असम्भव किस क्षण सम्भव बन जाता है, तुम जानना चाहती थीं न ? सुना था कभी यह ? रामकी वज्र-कठोर मूर्ति देखनेसे ही काम कैसे चलेगा बेटी, फूलोसे मृदु उनके हृदयकी कोमलता कौन देखेगा ? सीताको निर्वासन-का दण्ड देनेवाले हाथ ही तुमने देखे। उन काँपते हाथोंको नहीं देखा जिनसे सत्रह वर्षो तक रामने सीताकी स्मृति अपने हृदय-मन्दिरमे दबाये रखा था। कर्त्तव्य ही मनुष्यका पूरा परिचय नहीं है वासन्ती।

वासन्ती : [**प्रसन्नतासे गद्गद सीताके पास जाकर**] राम दूसरा विवाह नहीं करेंगे सखी ! [**सीताको हिलाकर**] सुनती हो सखी, रामके पास तुम्हारा स्थान सुरक्षित है ।

सीता : [**वहींसे**] आप सच कह रहे है पिता ? कर्त्तव्य ही क्या मानवका सम्पूर्ण परिचय नही है ?

वाल्मीकि : झूठ क्यों कहूँगा बेटी ? अश्वमेध यज्ञकी बात सुनते ही मै आशंकासे काँपने लगा था । अयोध्याकी यात्रा क्या सहज थी ? मै भी जानता था बेटी कि अश्वमेध यज्ञ सहधर्मिणीके बिना सम्पूर्ण नहीं होता•••[**कुछ सोचकर**] वसिष्ठसे मुझे डर लगने लगा था ।

वासन्ती : गुरु वसिष्ठसे डर ? क्यों पिता ?

वाल्मीकि : तपस्वी होनेके साथ वह महाराज रामचन्द्रके कुलगुरु जो है ! आश्रमका शान्त जीवन राजमहलोंके कोलाहलमे अपना सन्तुलन खो देता है। वसिष्ठका आदेश सदा नीतिसंगत ही नही होता । शूद्र पत्नीका अभिशाप व्यर्थ नहीं जायगा वासन्ती !

सीता : [**चौंककर**] शूद्र पत्नीका अभिशाप ? कैसा अभिशाप पिता ?

वाल्मीकि : तुमने सुना नही सीता ? दक्षिणमें शैवलपति शूद्रराज शम्बूक कठोर तपस्या कर रहा था । [**लव-कुश बाहर आते हैं, और सीताके पास खड़े हो जाते हैं ।**] रामके दरबारमे एक ऋषिने जाकर याचना की कि उनका पुत्र मर गया है । वसिष्ठने रामको उस शुद्रराजका वध करनेका आदेश दिया । वसिष्ठके मतसे शूद्रका वेदपाठ और धर्माचरण अन्याय है ।

लव : [**साश्चर्य**] शूद्रको वेदपाठका निषेध है ? किस शास्त्रमे ऐसा लिखा है ?

कुश : [**वाल्मीकिके पास आकर**] तब क्या हुआ पिता ?

वाल्मीकि : वसिष्ठने ब्राह्मण-पुत्रके मरनेका दोष शम्बूकको दिया। रामचन्द्रको अयोध्यासे पञ्चवटी आना पड़ा शम्बूकका वध करने। किन्तु निरपराध तपस्वीकी मृत्यु उसकी पत्नीसे सहन नही हुई बेटी !

सीता : हो भी नही सकती देव ! आँखोके सामने पतिकी हत्या सहन करनेवाली स्त्री अभी जन्म नहीं ले सकी है।—[**काँपकर**] तो उन्होने शम्बूकको मार डाला ?

वाल्मीकि : हाँ बेटी ! शम्बूकके तर्क, उसकी पत्नीके आँसू, सब व्यर्थ गये। चिदानन्द, विराट् ब्रह्ममे लीन तपस्वीके मनने किसी तरह यह स्वीकार नहीं किया कि उसने अधर्म किया है। रामचन्द्रने शम्बूकका सिर काट डाला।

सीता : [**मुँह ढाँपकर**] हे भगवान् !—यह तुमने क्या किया मेरे देवता ?

लव : इतना बड़ा अन्याय ? शम्बूककी तपस्याका यह पुरस्कार ? कायर, कापुरुष—

कुश : रामचन्द्र राजा हैं या हत्यारे ? वृद्ध तपस्वीपर हाथ उठानेके पहले ही उनपर वज्र क्यों नही गिर पड़ा ?

सीता : [**मुँहपरसे हाथ हटाकर चीख उठती है**] कुश ! लव ! बेटा !

वासन्ती : और आप कहते है भगवन् कि रामचन्द्रकी वज्र-कठोर मूर्ति देखनेसे काम नहीं चलेगा। वह मर्यादापुरुषोत्तम हैं।

वाल्मीकि : मै कुछ नहीं कहता वासन्ती। आगे आनेवाला कल ही इन प्रश्नोंका उत्तर देगा। मनुष्य होकर मनुष्यका विचार करनेका अभिमान वाल्मीकिके पास नही है।

सीता : आप शूद्र-पत्नीके अभिशापकी बात कह रहे थे पिता।

वाल्मीकि : पतिकी हत्याके समय पत्नीके मुखसे वरदान तो नहीं निकलेगा बेटी! शम्बूककी पत्नीने रामचन्द्रको शाप दिया कि वह आजीवन नरकानलमे पल-पल जलते रहेगे। इस जीवनमे उन्हे कभी शान्ति नहीं मिलेगी।

[**बाहरसे स्वर आता है—'महर्षि, आप आ रहे है न ?' वाल्मीकि उत्तर देते हैं—'आ रहा हूँ भाई, आ रहा हूँ।'**]

वाल्मीकि : वासन्ती ! सीता अधीर हो रही है। उसे आश्वस्त करो। बाहर ऋषि लोग मेरी प्रतीक्षा कर रहे है। मै चलता हूँ। राम दण्डकारण्य तक तो आये ही हैं। सम्भव है, ईश्वर भी आ जायें।

[**खड़ाऊँ पहनकर प्रस्थान।**]

वासन्ती : [**सीताके पास जाकर**] प्रसन्न होओ सखी। महर्षि वाल्मीकिने बड़ी भारी आशका दूर कर दी। अश्वमेध यज्ञकी बात सुनकर मैं विचलित हो उठी थी। स्वर्ण-प्रतिमाकी कल्पना तो अद्भुत है सीता! रामचन्द्र एक बहुत बड़े अपराधसे मुक्त हो गये।

सीता : तपस्वीकी पत्नीका अभिशाप तुमने सुना वासन्ती ? आर्यपुत्रको एक पलके लिए भी शान्ति न मिलेगी। तपस्वीकी साध्वी स्त्रीने उन्हे नरक-भोगका दण्ड दिया है। स्वय उनके

पुत्र उन्हे……अरे, तुम लोग बाहर जाकर खेलो बेटा ! [**लव-कुश सीताकी ओर देखकर बाहर जाते है**] इन अबोध बालकोको अपने पिताका नाम भी नही मालूम है। मै इनकी माँ हूँ पर इनके सामने उनका नाम लेनेमे लज्जासे धरतीमे गड़ जाती हूँ। इतना बड़ा दुर्भाग्य संसारमें किस माँका होगा वासन्ती ?

[**इसी समय कुमार चन्द्रकेतु और एक सैनिक दबे पाँव प्रवेश करते हैं, सीता और वासन्ती उन्हें नहीं देख पातीं।**]

वासन्ती : सौभाग्य कहो सीता ! सत्रह वर्षोके बाद सुयोग आया है। महाराज रामचन्द्र दण्डकारण्य आये है। उनका दर्शन न करोगी ? अयोध्याकी प्रजा अपनी महारानीका स्वागत करेगी।

सीता : सीताका यही परिचय तुम्हे मिला वासन्ती ? तमसामें अभी जल है। [**खड़ी होकर**] सीता लौट जायेगी अयोध्या ? अयोध्याकी प्रजाके स्वागतमे कही किसी कोनेमे व्यग नहीं हँसता रहेगा ? मनुष्यका स्वभाव क्या बदल जायेगा ? नही-नही वासन्ती। राजमहल सीताके लिए अब सपना है। अगर आश्रम भी शरण छीन लेगा तो सीता तमसामे कूद पड़ेगी, धरतीमे, माँकी गोदमे समा जायेगी।

[**सीता जल्दीसे अपनी कुटीमें चली जाती हैं, पीछे-पीछे वासन्ती जाती है। नेपथ्यसे स्वर आते हैं—'यह जो घोड़ा है, यह विजय-पताका और यह वीर सिंहनाद—यह सब सातों लोकोंमें अद्वितीय वीर, रावण कुलका संहार करनेवाले श्रीरामचन्द्रके है।'**]

सैनिक : [आगे बढ़कर चिन्तामग्न चन्द्रकेतुसे] व्यर्थ है यह सब स्वामी ! हमारे ऊँचे-ऊँचे बोलोंका उन तापस-कुमारोंपर कोई प्रभाव नहीं ।

चन्द्रकेतु : [सहसा ही रोककर] मैं सोच रहा हूँ सैनिक, यह दोनों स्त्रियाँ कौन थी !

सैनिक : स्त्रियाँ ? ओः ! यह स्त्रियाँ ! यह तो वन है, यहाँ तो तपसी लोग रहते ही है । होंगी किसी आश्रमकी देवियाँ ।

चन्द्रकेतु : तुमने सुना नही सैनिक, वह देवी सीताका नाम ले रही थी ! यह तो महर्षि वाल्मीकिका आश्रम है, देवी सीताने यहाँ शरण ली थी । मुझे विश्वास है सैनिक कि उन स्त्रियोंमेसे कोई स्वयं देवी सीता थी !

सैनिक : कहते क्या है देव ?

चन्द्रकेतु : हाँ सैनिक, सत्रह वर्षोंकी लम्बी अवधिके बाद उन्हे पहचानना क्या सहज है ? मेरा तो तब जन्म भी नहीं हुआ था । तुम भी तब हमारी सेनामें नहीं थे । हमने उन्हे देखा नहीं है । चित्रसे ही केवल परिचय है ।

सैनिक : फिर भी आपको विश्वास होता है कि वह देवी सीता थीं ?

चन्द्रकेतु : एकने पूछा—[महाराज रामचन्द्र दण्डकारण्य आये है, उनका दर्शन न करोगी ? दूसरीने उत्तर दिया—राजमहल सीताके लिए अब सपना है । अगर आश्रम भी शरण छीन लेगा तो सीता तमसामें कूद पड़ेगी, धरतीमे समा जायेगी] इतना तेज देवी सीतामे ही तो हो सकता है सैनिक !.... मैं कुटीके द्वारसे पुकारता हूँ, सम्भव है देवी फिर दर्शन दें और मेरे प्रश्नका उत्तर मिल जाय ।

सैनिक : धोखा भी हो सकता है स्वामी ! व्यर्थके कुतूहलमे पडकर समय नष्ट न करें । महाराज रामचन्द्रको कल ही सूचना जा चुकी है, वह आते ही होगे । अश्वमेध यज्ञमे बाधा उनसे सहन न होगी !····कितनी लज्जाकी बात है स्वामी ! महाराज रामचन्द्रका दिग्विजयी अश्व दो साधारण तापस-कुमार पकड़ लें और दो दिन तक प्रयत्न करके भी हमारी सेना उसे छुड़ा न सके ! क्या कहेंगे महाराज !

चन्द्रकेतु : चन्द्रकेतु लक्ष्मणका पुत्र है सैनिक ! युद्धसे मुँह मोडना वह नहीं जानता । किन्तु इन दोनों बालकोंके विरुद्ध शस्त्र उठाते हुए हाथ कॉपने लगते है । न जाने छातीके अन्दर क्या होने लगता है । लगता है, जैसे कोई अपराध कर रहा हूँ । कलसे देख रहा हूँ कि इनके सामने आते ही मैं दुर्बल होने लगता हूँ ।

[**सहसा ही शत्रुघ्नका प्रवेश ।**]

शत्रुघ्न : तुम कायर हो चन्द्रकेतु ! इसीलिए तुम्हें भेजा गया था ? सूर्यवंशके मानकी रक्षा तुम यही दुर्बल हृदय लेकर करोगे ? मुझे तुम्हारे ऊपर लज्जा आती है ।

चन्द्रकेतु : यह आप कह रहे है तात शत्रुघ्न ! चन्द्रकेतुके बाहुओकी शक्ति आपने नहीं देखी ? उसकी वीरताका आपको प्रमाण चाहिए ?

शत्रुघ्न : तब फिर यह दुर्बलता क्यों ? युद्धमे बालक और स्त्री अबध्य होते है किन्तु जब बालक अपनी मर्यादा खो दे तब उसे दण्ड देना ही पड़ता है ।

चन्द्रकेतु : [**अपनी तलवार शत्रुघ्नके सामने बढ़ाकर**] तब यह दण्ड आपके ही हाथों मिले । चन्द्रकेतु विवश है तात !····मुझे

लगता है जैसे मै अपने भाइयोपर तलवार उठानेका अप-राध कर रहा हूँ। उन दोनों बालकोंकी दृष्टिके आगे मैं मंत्रमुग्ध-सा ठगा रह जाता हूँ। तलवार हाथसे छूटने लगती है।

सैनिक : कल आपने देखा नहीं स्वामी कि हमारी सेना उनके तीरों की मारसे कैसे भागी थी? उन्हे बालक कहना उनका अपमान करना है। वह तो युद्धकी विद्यामे हमारे भी गुरु हैं।

शत्रुघ्न : तब हम भैयाको क्या उत्तर देंगे चन्द्रकेतु? दो बालकोंसे हम पराजित हो गये, यह सुनकर वह प्रसन्न होंगे? अपने सामने उन दोनों बालकोंको गर्वोन्नत खडे देखकर वह हमे क्षमा करेंगे?

चन्द्रकेतु : करेंगे। महापराक्रमी रामचन्द्रकी सेनाके आगे छाती खोल-कर खड़े होनेवाले बालक साधारण नहीं होंगे। उनकी स्पर्द्धा पर महाराज स्वयं चकित होंगे।

[एक ओरसे महर्षि वाल्मीकि और रामका प्रवेश। रामके हाथमें धनुष है।]

राम : मैं उन बालकोको देखना चाहता हूँ महर्षि! दण्डकारण्यमे जृम्भक अस्त्रोंका प्रयोग करनेवाले यह बालक मेरे लिए कुतूहल बन गये है। शत्रुघ्न, कहाँ है वह तेजस्वी वीर?

शत्रुघ्न : मै देखता हूँ भैया। [**बाहर जाते है।**]

[**सैनिक भी अभिवादन करके जाता है।**]

वाल्मीकि : देख लेंगे महाराज रामचन्द्र! कुछ घड़ी वनका आतिथ्य ग्रहण कीजिए। आश्रमको धन्य कीजिए।

राम : पातकी, पत्नीहन्ता राम····

वाल्मीकि : पत्नीहन्ता ?

राम : हाँ महर्षि ! पत्नीहन्ता रामके स्पर्शसे आश्रमका पवित्र अचल कलुषित हो जायगा। वनके शान्त जीवनमें आग लग जायगी। उसकी छायासे भी घृणा करो भगवन् !

वाल्मीकि : तुम मर्यादापुरुषोत्तम हो राम, यह न भूलो।

राम : वह कैसी मर्यादा है महर्षि, जिसकी राक्षसी भूख अनन्त प्रेमके हृदयमे छुरी मारकर भी शान्त नहीं होती ? फूल-को पाँवसे कुचल देनेमें कौन-सी मर्यादा है ? बीनकी रागिनीका गला घोट देनेमे किस मर्यादाका परिचय है ? अखण्ड पवित्रताको पंकिल कर देनेमे कहाँ मर्यादा छिपी है ? पत्नीका परित्याग पतिके लिए मर्यादा है महर्षि ? स्त्रीके प्रति पुरुषका कर्तव्य क्या कुछ नही है ? पत्नी क्या पतिकी सम्पत्ति है ? नारी क्या इतनी अपदार्थ, इतनी असहाय है ?

वाल्मीकि : महाराज !

राम : मै अब भी राजसिंहासनपर क्यों बैठा हूँ महर्षि ? राजदण्ड का अभिमान मुझे नहीं चाहिए। रत्न-जटित राजमुकुट मेरा मुँह चिढाता है। राजतिलक नही, जैसे मेरे मुँहपर किसी ने आमावास्याका अन्धकार मल दिया हो।···सीताने मुझे एकान्त प्रेम दिया था महर्षि, ऐसा प्रेम जिसकी तुलना इस विश्व-ब्रह्माण्डमे नहीं है। कर्त्तव्यके सूखे, नीरस बजरमे उस प्रेमने रसकी गगा बहा दी थी किन्तु····किन्तु मैंने अपने हाथों रसका वह उत्स-मुख बन्द कर दिया भगवन् ! तभी कहता हूँ, राम पत्नीहन्ता है। उसके नाममे भी पाप है।

वाल्मीकि : राम चक्रवर्ती सम्राट् है। उनके पुण्यका जयघोष ससारमें व्याप्त होगा।

राम : वह भी कहाँ हुआ महर्षि ? रामके क्षत्रियत्वकी स्पर्द्धा आश्रमवासी दो बालकोंसे पराजित हो गई। अश्वमेध यज्ञका अभिनय दो तापस-कुमारोंने विफल कर दिया। अयोध्याका सिंह आश्रमके मृगछौनोंसे हार मान गया। चन्द्रकेतु, बुलाओ उन बालकोंको। उनका साहस मुझे चकित कर रहा है। देखना चाहता हूँ वनकी वह विभूति जो राजमहलकी राजनीतिको चुनौती दे रही है। तुम भी उनसे हार मान गये चन्द्रकेतु ?

चन्द्रकेतु : मेरे हाथ ही नही उठते महाराज !

राम : तुम्हारे हाथ नही उठते ? रामका पथ अवरुद्ध करनेवालों के विरुद्ध सूर्यवंशके गौरवका हाथ नही उठता ? कहते क्या हो चन्द्रकेतु ? रामकी सेना दो नन्हे बालकोंसे पराजित हो जायेगी ? रामबन्धु शत्रुघ्न और लक्ष्मण-तनय चन्द्रकेतुका वीरत्व वनवासी दो अबोध शिशुओंकी क्षमाका भिखारी होगा ? छि, रामको यह सब सुननेका अभ्यास नही है चन्द्रकेतु। जाओ, यह कायर मुख रामके विजयोत्सवको मलिन कर देगा।

चन्द्रकेतु : [**अभिवादन करके जाते-जाते**] जा रहा हूँ महाराज ! बड़ोके सामने अविनय मैंने नही सीखा। किन्तु उन बालकोंके सामने आप भी दुर्बल हो जायेंगे। दण्डके लिए उठा हुआ हाथ····

राम : चन्द्रकेतु !

चन्द्रकेतु : महाराज, चन्द्रकेतु हिमालयसे चुनौती ले सकता है किन्तु फूलको पाँवसे नहीं कुचल सकता। मुझे लगा देव कि मै जैसे अपने ही भाइयोपर शस्त्र उठा रहा हूँ ! [**जाता है।**]

राम : चन्द्रकेतु ! ठहरो चन्द्रकेतु ! सुना महर्षि, चन्द्रकेतुने क्या कहा ? ऐसा उसने क्यों कहा ? यह कैसा संकेत था देव ?

वाल्मीकि : अभी समय नहीं आया था रघुराज किन्तु चन्द्रकेतुके हृदयने सत्यका दर्शन पा लिया।—सत्रह वर्षो पूर्वका एक अँधेरा प्रभात तुम्हे स्मरण है राम ?

राम : अँधेरा प्रभात ! सत्रह वर्षो पूर्वका एक अँधेरा प्रभात ? आप तो पहेलियोंमें बातें कर रहे है भगवन् ! मेरी बुद्धि भ्रमित हो रही है।

वाल्मीकि : बुद्धिका भ्रम ही था राम, नही तो गर्भवती निष्कलक महारानी सीताको छलसे वनमे न भेजते। चन्द्रकेतुका सकेत कटु सत्य है, आश्रमवासी यह दोनो बालक सीताके गर्भसे उत्पन्न तुम्हारे पुत्र है महाराज—लव और कुश !

राम : मेरे पुत्र ! सीताकी सन्तान ! [**जैसे मूर्छित होकर गिर पड़ेंगे, एक वृक्षका सहारा ले लेते हैं।**] यह सब स्वप्न है या सत्य ! नहीं-नहीं महर्षि, रामसे यह आघात सहन नहीं होगा। उसकी छाती फट जायेगी देव, ऐसा निर्दय परिहास वह नही झेल सकेगा। उसे मार डालो, उसका हृदय-पिण्ड निकालकर वनवासी पशु-पक्षियोंको खानेके लिए बिखेर दो, शरीरका एक-एक बूँद रक्त निचोड़ लो महर्षि, किन्तु—किन्तु यह दण्ड उसे मत दो। राम मर गया है महर्षि, [**धरतीपर लोटने लगते है।**] सीता-विहीन

रामके शवका इन फूलोसे शृंगार मत करो ! सीता ! कहाँ हो सीते ! अब भी तुम्हारी आँखोंका एक बूँद जल न मिलेगा ? आओ, देखो सीता, तुम्हारा पति, अयोध्याका राजा राम, कबसे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है । सत्रह वर्षोंमें एक पलको भी उसकी पलकें नही झपीं । अहोरात्रि तुम्हारे लौटनेकी प्रतीक्षामे उसकी खुली आँखें बिछी रही है । देखो उसके अधरोंकी सूखी हँसी, देखो उसके नेत्रोकी सूनी दृष्टि । उसकी कलंकित काली काया देखो सीते ! विक्षुब्ध दारुण पश्चात्तापकी ज्वालामे झुलसा हुआ उसका जीवन देखो जानकी । आओ, आओ सीते, रामको तुम्हारी आवश्यकता है [**धरतीपर ही माथा टेक देते हैं ।**]

वाल्मीकि : [**पास जाकर उठाते हुए**] सच्चे हृदयसे किया हुआ पश्चात्ताप अमूल्य होता है रघुनन्दन । लव और कुशको ग्रहण करो । उनका दुर्भाग्य आज सौभाग्यमे बदल जाय । वह तो यह भी नही जानते कि उनके पिता कौन है । मै उन्हे बुला लाता हूँ । [**जाने लगते हैं ।**]

राम : [**उठकर उन्हें रोकते हुए**] तब उन्हे अपने दुर्भाग्यसे ही खेलने दो महर्षि । रामका परिचय पिताके रूपमे पाकर उनका सौभाग्य रो पड़ेगा । यह परिचय उन्हे अगौरवके गर्त्तमे खीच ले जायगा । अपरिचय ही रहने दो भगवन् । भ्रमका आवरण उनकी आँखोके आगेसे न हटाओ । [**रोने लगते हैं**] उनके आगे जानेका साहस राममे नहीं है ।

वाल्मीकि : [**जानेके लिए बढ़ते हुए**] बूढे वाल्मीकिके जीवनमे यही एक कर्तव्य शेष था राम । उसकी रामायण अधूरी पडी है । [**बाहर चले जाते है ।**]

[नेपथ्यमें करुण-रागिनी। राम वाल्मीकिकी कुटीके बरामदेमें खंभेसे टिककर खड़े हैं।]

राम : जो विष-वृक्ष तुमने अपने हाथों रोपा था राम, आज उसमें फल लगे हैं। उठाओ शस्त्र और अपना हृदय वेध डालो। अपने ही रक्तसे अपनी दानवी प्यास बुझा लो राम। पत्नीहन्ता रामका परिचय अधूरा क्यों रह जाय? पुत्रकी हत्याका कर्त्तव्य भी पूरा कर लो। सीता! कहाँ हो रामकी हृदयेश्वरी! रामकी मर्यादा अभी भूखी है। तुम्हे घरसे निर्वासन देकर ही वह सन्तुष्ट नही हुआ, तुम्हारे पुत्रोंके मस्तकका कर माँगने वह आया है। प्रसन्न हो न? तुमने उस दिन कहा था—सूर्यवशकी लज्जा तुम्हारे पास सुरक्षित रहेगी। रामकी मर्यादाका इतिहास सीताके कारण कलंकित नही होगा। देखो, रामने इक्ष्वाकु-वशका मुख कितना उज्ज्वल किया है। देख रही हो न?

[इसी समय सीताकी कुटीसे सीता और वासन्ती जल्दीसे बाहर निकलती हैं। सीता रामको देखती है, राम सीता-को। सीता सहसा ही आश्चर्य-चकित कह उठती हैं—'आर्यपुत्र!' रामके मुखसे निकलता है 'सीते!' सीता तत्काल अन्दर लौट जाती हैं, वासन्ती भी!]

राम : **[पुकारते हुए]** सीते! सीते! चली गई? क्यों चली गई सीते? **[कुटीके खंभेसे टिककर]** यह कौन थी? मेरी सीता ही तो। मुझे भ्रम तो नहीं हुआ? नहीं, वही स्नेह-प्रतिमा थी। अधरोंपर विदाके दिनकी वही सूखी हँसी, आँखोंमे वही उदास, शान्त नीरव अवमानना, मुखपर वही व्यथामधुर, संयमित निरीहता। [**बरामदेमें**

माथा टेकते हुए] तुमने मुझे 'आर्यपुत्र' कहा ? बोलो सीते, अब भी तुम्हारे हृदयमे नराधम, हतभाग इस रामके लिए स्थान है ? अब भी क्षमाके शीतल जलसे इस अनुतप्त जीवनकी ज्वाला शान्त कर सकती हो ? बोलो सीते, एक बार कह दो कि रामको तुमने क्षमा कर दिया। केवल एक बार—बस, एक बार तुम्हारे मुँहसे क्षमाका शब्द सुनना चाहता हूँ। बहुत दिनों तक इस हृदयमें रावणकी चिता धू-धू जलती रही है जानकी, इस भस्मको एक बार उठाकर माथेसे लगा लो। एक बार—एक बार—

[**लव-कुशका प्रवेश। रामको नहीं देखते।**]

लव : यह कैसे हो सकता है कुश। हमारे पिता महाराज रामचन्द्र ? यह असम्भव है।

कुश : तब हम जंगलमें क्यों पड़े है लव ? महाराज रामचन्द्र जिन बालकोके पिता होंगे वह अयोध्याके राजमहलोंमें गुदगुदे गद्दोंपर खेलते होंगे।

लव : हाँ। हमारी तरह लकड़ियाँ न बटोरते होंगे। सीता तो हमारी माँ है न ? महाराज रामचन्द्र हमारे पिता है तो माँको उन्होंने घरसे क्यों निकाल दिया ? माँका क्या अपराध था ?

कुश : महर्षि वाल्मीकिकी बात झूठ नहीं हो सकती, किन्तु रामको पिता कहनेको जी नहीं चाहता। उनका पुत्र कहलानेमे हमे लज्जा आनी चाहिए।

[**राम धीरे-धीरे उठकर खड़े हो जाते हैं।**]

लव : पुत्र कहते हो कुश ? हमारी माँको जिसने निर्दय होकर घरसे निकाल दिया, हम उसके शत्रु हैं, शत्रु ।

राम : [**दौड़कर लवको हृदयसे लगा लेते हैं ।**] शत्रु ! तुम रामके शत्रु ? [**कुशका मुख दोनों हथेलियोंमें भरते हुए**] तुम रामके शत्रु हो ?—राम, अब भी तू जीवित है। भगवान् अंशुमाली, रच दो अपनी किरणोंसे रामकी मरण-शय्या । वह दुर्भिक्ष है, महामारी, हाहाकार, सर्वनाश है राम । अकल्याण, कलंक, अशांति और अनर्थका जीवत अभिशाप है वह । बालिवधका पापी, कुम्भकर्णका हत्यारा, विभीषणको भ्रातृ-द्रोह सिखानेवाला पातकी, सीताके निष्कलक समर्पणका दम घोंटनेवाला निर्दय और तपस्वी शम्बूककी हत्याका अपराधी राम तुम्हारी अनन्य घृणाका पात्र है लव-कुश । इसे घृणा चाहिए, घृणा ! तुम्हारी, सीताकी, इस चराचर ब्रह्माण्डकी घृणा ! स्नेह उसे मत दो, भक्ति और आदर उसे मत दो । दो अपनी उपेक्षा, दो अपना तिरस्कार । दे सकोगे बेटा ?

लव-कुश : [**आश्चर्य-चकितसे खड़े रहते हैं ।**]

राम : चुप कैसे रह गये लव ? बोलो कुश ! क्या रामको तुम्हारी घृणा भी न मिलेगी ? अपने पिताकी झोलीमें क्या तिरस्कारकी भीख भी नहीं डाल सकते ? पिता पुत्रसे उपेक्षाकी भिक्षा माँग रहा है, वह भी उसे न मिलेगी भगवन् ? [**सीताकी कुटीके अन्दरसे स्वर आते हैं—'बेटा लव-कुश !'**]

लव : चलो कुश, माँ बुला रही है ।

[दोनों सीताकी कुटीमें जाते है, दूसरी ओरसे शत्रुघ्नका प्रवेश ।]

शत्रुघ्न : वह दोनों बालक यहाँ आये थे भैय्या ?

राम : **[प्रकृतिस्थ होकर]** आये थे शत्रुघ्न ।

शत्रुघ्न : क्या कहा उन्होंने ? यज्ञका घोडा वह सीधे लौटायेंगे या नही ? क्या आश्रमकी पवित्र धरती तपस्वियोंके रक्तसे लाल करनी होगी भैय्या ? अश्वमेध यज्ञकी पूर्णाहुति यज्ञके पूर्व ही देनी होगी ?

राम : अब उत्साह नहीं होता शत्रुघ्न ! बन्द कर दो यह सब ! चक्रवर्ती सम्राट् बननेका स्वप्न रामके लिए एक दु.स्वप्न ही बना रहे ।

शत्रुघ्न : बन्द कर दूँ ? अश्वमेध यज्ञका आयोजन बन्द कर दूँ ? कहते क्या है भैय्या ? चक्रवर्ती सम्राट् बननेका स्वप्न रामचन्द्रके लिए दु स्वप्न होगा तो सत्य किसके लिए होगा ? यही कहनेके लिए आप अयोध्यासे यहाँ आये है ?

[सीता लव-कुशके साथ अपनी कुटीसे बाहर आती है । वह बरामदेमें ही ठहर जाती है, लव-कुश नीचे आकर रामकी ओर बढ़ते है ।]

राम : अयोध्यासे चलनेके पूर्व नही सोचा था शत्रुघ्न कि विधाता रामके साथ इतना निष्ठुर उपहास करेगा । सत्रह वर्षोकी लम्बी अवधिमे हृदयके एकान्त कोनेमे रामने जो कल्पनाका महल बनाया था, आज उसके खण्डहरोंको देखकर भयसे काँप उठता हूँ भैय्या ! एक स्वप्न था जो टूट गया । एक विश्वास था जो नष्ट हो गया ।····राम अमर तो नही है ।

अमृतकी घूट पीकर तो नहीं आया है। श्मशानके देव चक्रवर्ती सम्राट् और भिक्षुक राममे भेद नहीं करेंगे।

सीता : [**जल्दीसे नीचे उतर आती है, रामके पावोंकी धूल माथेसे लगाती है**] ऐसा न कहे आर्यपुत्र! सीता अभी जीवित है! अब भी धरतीपर धर्म है, अब भी पुण्यकी उज्ज्वल पताका पापके अन्धकारकी छाती चीरकर फहरा रही है। सूर्य अब भी पूर्वमे ही उदय होता है आर्यपुत्र! स्वर्गका राज पृथ्वीपर नहीं, आकाशपर है। अब भी चन्द्रमासे शीतलता झरती है, आग नही। पूजापर चढ़े श्वेत कमलकी भाँति पवित्र रामका नाम अमर होगा आर्य पुत्र, श्मशानके, देव सतीके नेत्रोंकी ज्वालासे खेलनेकी स्पर्द्धा नही रखते।

शत्रुघ्न : मातेश्वरी सीते! मैं क्या स्वप्न देख रहा हूँ भैया? महर्षि वाल्मीकि····[**पुकारते हुए बाहर जाते हैं।**]

राम : [**सीताको उठाकर करुण कण्ठसे**] सीते! जानकी! रघु-कुल-लक्ष्मी! भगवान्, यह कैसा आनन्द है! कैसा असीम, अकल्पनीय, अनिर्वचनीय सुख है यह। भिक्षुक रामकी कन्थामे इतनी बड़ी निधि डाल दी प्रभो? [**सीताका मुख हाथमें लेकर**] मेरी ओर देखो कल्याणी, इस जीर्ण-शीर्ण नर-ककालकी ओर देखो! [**मुख छोड़कर हाथ पकड़ लेते है।**] जानकी, सीते! तुम्हें रामपर करुणा नही आई? तुम्हारे नेत्रोमे अभागे रामके लिए क्षमाका एक बूँद जल नहीं रह गया?

सीता : [**हाथ छुड़ाकर लव-कुशसे**] अपने पिताके चरण छुओ बेटा!

लव-कुश : [संकोचके साथ चरण-स्पर्श करनेके लिए झुकते हैं ।]

राम : [बीचमें ही उठा लेते हैं ।] तुम्हारी घृणा ही रामका सबसे बडा आदर है मेरे लाल ! अपनी निरपराध माँको निर्वासनका दण्ड देनेवाले रामको तुम कभी क्षमा मत करना । पिता कहकर उसके आगे श्रद्धाके टुकड़े न बिखेरना । वह तुम्हारी उपेक्षाका पात्र है, तुम्हारी दया और करुणाका भिखारी ! तीखे तिरस्कारकी भिक्षा उसे दे सकोगे लव-कुश ?

सीता : सौजन्य राजमहलोंमे ही नहीं पलता आर्यपुत्र ! आश्रमका धर्म विनय है । तुम अयोध्याके ईश्वर हो, लव-कुशके पिता हो । पुत्रका कर्त्तव्य श्रद्धासे आदेश लेता है, घृणा से नही । पूजाका आसन अपनी महिमासे ऊँचा ही रहेगा ।····कहाँ ? आशीर्वाद तो दिया नही आर्यपुत्र ? सीताका त्याग कर सकते हो स्वामी, सीताकी अबोध सन्तान तुमसे स्नेहकी आशा रखती है । ससारमे चलनेका बल इन्हे दो आर्यपुत्र ! आशीर्वाद दो कि सीताका अनादृत मातृत्व इनके यात्रा-पथका पाथेय न बने ।

राम : ऐसा ही होगा जानकी । पिताके हृदयकी मगल-कामना····

लव : [सतेज] लवने तुम्हारी आज्ञाका चरण-स्पर्श किया है माँ, रामका चरण-स्पर्श करनेमे लवकी श्रद्धाको चोट लगती है । इतने दिनों तक अन्धकारमे भटकता रहा, पिताका परिचय पानेको मन व्याकुल रहता था किन्तु आज रामचन्द्रको पिता कहनेमें एक ऐसी लज्जासे मर रहा हूँ जिसका अनुभव वही पुत्र कर सकता है जिसकी माँ, पूजनीया, स्नेहकी देवी माँ, पति द्वारा अशेष अगौरव-

के पथपर ढकेल दी गई हो। चलो भैया कुश, यहाँ मेरा दम घुट जायगा। महाराज रामचन्द्र, आप सम्राट् हों, चक्रवर्ती सम्राट् हों, स्वयं ईश्वर हों, किन्तु लव, उपेक्षिता माताका उपेक्षित पुत्र लव, आपको कहेगा कायर, स्वार्थी और रक्त-पिपासु। लौटा दो इनका घोड़ा कुश, इनसे युद्ध करनेमे भी हमारा अपमान है। [**जानेको उद्यत।**]

सीता : [**चीखकर**] बेटा लव, तुम्हें हो क्या गया है ? यह कैसा पागलपन है ?

कुश : इसे पागलपन कहती हो माँ ? लव-कुश महाराज रामचन्द्र-के पुत्र है, यह परिचय उन्हे महत् करेगा ? नहीं महाराज रामचन्द्र, यह परिचय बहुत मँहगा है। चलो भैय्या ! महाराजं रामचन्द्र ! आपका अश्वमेध यज्ञका घोड़ा बाहर बँधा है। भैय्या लवने कुतूहलवश उसे पकड़ लिया था। आपका चक्रवर्ती बननेका स्वप्न स्वप्न ही रह जाता, हमारे बाहुओंकी शक्ति आपने नही देखी। किन्तु हमारी उदासीनताने आपका पथ खोल दिया। आप चक्रवर्ती सम्राट् हों किन्तु माँकी गरिमाके सामने आपका साम्राज्य तुच्छ है, नगण्य है।

[**लव-कुश बाहर निकल जाते हैं।**]

सीता : [**रामके पास जाकर**] तुम दु:ख न करो आर्यपुत्र, विधाताका विधान अन्यथा नहीं हो सकता। सीताकी सन्तान तुम्हारे मगल-पथकी बाधा नहीं बनेगी। उज्ज्वल, शिशिर-धौत-पद्मकी सुरभि बनकर तुम्हारा यश दिग्दिगन्तमें लहराये सीताके हृदयकी यह कामना पूरी हो।

तुम्हारा यह यशगान कभी बन्द न हो। एक दिन तुम्हारे कर्त्तव्यके कोलाहलमें मेरे नन्हे-से हृदयकी साँस घुट गई थी। आज मेरा मन सगीत मौन है, वह सुख-स्वप्न निदारुण कटु-सत्यमें खो गया है किन्तु विश्वास मानो देवता, सीताने कभी स्वप्नमें भी तुम्हारा विस्मरण नहीं किया। उसका चरित्र दर्पण-सा निर्मल रहा है और उसकी रामके प्रति एकनिष्ठा पुण्यतोया सरयू-गोदावरीकी भाँति पवित्र, निष्कलंक! वशकी कुलदेवी उसकी प्रार्थनाको मन्दिर-द्वारसे अनसुनी नही लौटाएँगी। लौट जाओ आर्य-पुत्र अपने यशसे अर्जित राज्यमें, मर्यादाके मन्दिरमे। प्रजा अपने चक्रवर्ती सम्राट्का स्वागत करनेको उतावली हो रही है।

[**मंचपर प्रकाश धीमा होता है, नेपथ्यमें करुण-रागिनी अवतरित होती है।**]

राम : [**भावावेशसे कंठ रुद्ध हो गया है, सीताको वक्षसे लगा लेते हैं।**] नहीं सीते! स्वागतका वह कोलाहल रामके लिए शवयात्राकी शान्तिमें बदल जायगा। सत्रह वर्षो तक राजमहलमे अनलशय्यापर तडपता रहा हूँ जानकी, पिशाच बनकर मरघटमे घूमता रहा हूँ। भगवान् वसिष्ठ-का आदेश वज्र बनकर रामके वक्षपर जमा रहा है। प्रजाके पागलपनपर रामने पत्थर बनकर अपना हृदय बलिदान किया है। अब सामर्थ्य नही है देवी! रामको राज्य नहीं चाहिए, राजमहल नहीं चाहिए, धन-वैभव-सम्पदा, कुछ-नही चाहिए। स्वयं भगवान् भी उसके द्वारसे आज विमुख लौट जायेंगे। राम भिक्षुक बनकर रहेगा, उसे

भिखारीका सन्तोष चाहिए। उसे चाहिए पत्नी, उसे चाहिए पुत्र। सुनती हो कल्याणी। रामको चाहिए सीता, रामको चाहिएँ लव-कुश! इस विभूतिपर त्रिभुवनका साम्राज्य राम ठुकरा देगा।

सीता : [**रामसे अलग हटकर**] नहीं, ऐसा नहीं होगा महाराज! कर्त्तव्य प्रेमसे पराजित नही होगा। मर्यादापुरुषोत्तम राम स्त्रीके स्नेहपाशमें बँधकर क्या प्रजाकी उपेक्षा करेंगे? सूर्यवंशका इतिहास नारीके रक्तसे लिखा जायेगा और वह नारी होगी सीता। वह दिन भूल गये महाराज? नरके मर्यादाकी रक्षाके लिए जिस दिन राजा रामचन्द्रने माँके आँसुओंकी शपथको ठुकरा दिया था? स्त्रीके समर्पणकी ओरसे आँखें बन्द कर ली थीं? वही राजा है, वही प्रजा है और वही मर्यादाकी लिप्सा है। वही मानवका अहम् है। दया-माया-ममता तुम्हारे लिए खेल है देवता। वह अभागों-का अभिशाप है। शक्तिहीनोंका सम्बल है। सब ओरसे समर्थ राम उस सम्बलके अधिकारी नही।

राम : कहती क्या हो सीते! दया-माया-ममताका अधिकारी राम नही रह गया अब? अकिंचन भिखारी जिस निधिके बल-पर सम्राट्का आसन ठुकरा देता है, राजा राम उस निधिको आज छू भी नही सकता? शासनकी नींवमे पत्नीके प्रेम और सन्तानकी ममताका रक्त शक्तिके लिए चढेगा? यशलिप्सा उसे पशु बना देगी देवी? राजा क्या मनुष्य भी न रह जायगा? वह क्या सबकी घृणा, सबकी उपेक्षा, सबके तिरस्कारका ही अधिकारी है?— [**सीताके दोनों हाथ पकड़कर**] नहीं सीते! अयोध्याका

उजड़ा सुहाग तुम्हें बुला रहा है! कितने दिनोंसे रघुकुलपर फैला अमावास्याका अन्धकार चाँदनीकी एक किरणकी प्रतीक्षा कर रहा है। लौट चलो जानकी—मानका अवसर नही है देवी। [**सीता अपनी कुटीकी ओर बढ़ती है। राम पीछे-पीछे जाकर पृथ्वीपर बैठकर**] चक्रवर्ती सम्राट् बननेकी स्पर्द्धा रखनेवाला रामचन्द्र, तुम्हारे स्नेह-मन्दिरसे तिरस्कृत राम, घुटने टेककर तुमसे दयाकी याचना कर रहा है। एक बार उसे क्षमा कर दो—बस एक बार उसकी ज्वालाको अपनी करुणाकी शीतल बूँदोंसे शान्त कर दो। एक बार कह दो कि राम तुम्हारा है—केवल एक बार कह दो कि तुमने क्षमा कर दिया।

[**प्रकाश और धीमा हो जाता है, दूरपर बिजली कड़कनेके स्वर। मंचकी पृष्ठभूमिमें बिजली चमकने लगती है।**]

सीता : [**रामके पास आकर बैठ जाती है, शरीरपर हाथ फेरते हुए**] सीताके मन-मन्दिरके स्वर्ण-सिंहासनपर अहोरात्रि रामकी ही प्रतिमा पूजा पाती रही है स्वामी। नारी प्रेम एक बार करती है और समर्पणमे स्वयं मिट जाती है। प्रेम व्यवसाय नही है आर्यपुत्र! तुम राजनीतिकी तुलापर रमणीका प्रेम तौलना चाहते थे पर ठगे गये।—सच्चा प्रेम केवल पास ही नही खीचता, वह दूर होना भी जानता है। सीताको दूर ही रहने दो, तुम्हारे यशको आज इसकी आवश्यकता है। अकल्याणकी जिस प्रतिमाको एक दिन प्रजाके लिए हाथ पकड़कर घरसे निकाल दिया था, आज क्यों उसे आदरके साथ उसी घरमे ले जानेका आयोजन

कर रहे हो। जिस कारण सीताका त्याग किया था, वह कारण अपने स्थानपर अब भी स्थिर है। प्रजाको अपने प्रश्नका उत्तर अभी नहीं मिला है महाराज।

[सहसा ही वाल्मीकिका प्रवेश, भाव-गद्गद हैं। आँसू पोंछते हैं।]

वाल्मीकि : वह उत्तर प्रजाको कभी नही मिलेगा वैदेही! बूढे वाल्मीकि-के नेत्रोमे भी आँसू भर आये है बेटी! उठो राजेन्द्र, उठो जानकी। तुम्हारा यह मिलन विचित्र होते हुए भी विश्वमे चिरस्मरणीय बना रहेगा। मै तो पत्नीविहीन हूँ राम, रमणीका प्रेम, सन्तानकी ममता, माताका वात्सल्य, यह सब मेरे लिए शब्द-मात्र है। मै नही जानता राजसुख, नही जानता राजनीति। मेरी शिरा-उपशिराओंका रक्त तो आश्रमके नीरस जीवनने सुखा डाला है। **[राम और सीता उठ गये है। रामने वाल्मीकिकी कुटीके खम्भेसे माथा टेक दिया है, सीता नतानना खड़ी है।]** निर्दोष प्राणियोंकी हत्या करनेमे भी एक दिन डाकू वाल्मीकि विच-लित नहीं होता था। आज उसका सयम पिघल रहा है। मर्यादापुरुष! सीताको ग्रहण करो, वह तुम्हारी शक्ति है, मूर्तिमान् पवित्रता है, पुण्यकी उज्ज्वल प्रतिमा है! यही तुम्हारे अपराधका शमन होगा।

सीता : [**म्लान-मुख**] पिता!

राम : [**वहींसे**] रामके पापका प्रायश्चित्त अभी पूरा नहीं हुआ महर्षि वाल्मीकि! [**बिजली गरजती है।**] यह क्या? असमय यह मेघ क्यो घिर रहे है महर्षि? आकाशमें प्रकृति-का उन्मत्त ताण्डव क्यों चलने लगा? भगवान् अंशुमालीने

लज्जासे मुँह क्यों छिपा लिया ? [**पृष्ठभूमिमें बिजली चमकती है।**] मेघोकी छाती चीरकर देवीने किस अनिष्टकी सूचना दी ? अब यह किस भविष्यकी भूमिका है भगवान् ?····क्या ? [**करुण कण्ठ**] आशा त्याग दूँ ? सीताकी क्षमा इस अपराधी रामको कभी नहीं मिलेगी ? उसका वरदहस्त अभागे रामको कभी अभय न देगा ? सुन रहे हो महर्षि, भगवतीकी यह आकाशवाणी ? विधाताके अभिशापकी यह वर्षा देख रहे हो पिता ? सीते···· जानकी····

वाल्मीकि : [**सीताके पास जाकर, मस्तकपर हाथ रखकर**] त्रिलोकीका हृदय तुम्हारा आवाहन कर रहा है बेटी। इस व्याकुल पुकारकी अवहेलना मत करो। पुरुषका प्रेम दम घुटकर मर जायगा।

[**मुञ्चपर अन्धकार बढ़ता है, बादल गरजते हैं।**]

सीता : [**सतेज**] किन्तु नारीका आत्म-सम्मान अमर हो जायेगा पिता। रामका प्रेम सीताके हृदयमें प्रलय-पर्यन्त जीवित रहेगा किन्तु सीताका शरीर अपमानित होकर फिर उसी घरमें लौट जाय, जहाँसे अपना काला मुख लेकर वह चली आई थी, यह मुझसे सहन नहीं होगा। लाछिता नारी यही आदर्श लेकर अपने पथपर चलेगी ? अपमान ही आप, रमणीको देना चाहते है पिता ? रोनेके लिए स्त्रीका जन्म हुआ है ? मेरी ओर देखिये, क्या है मेरे जीवनमें ? अपना अनन्य समर्पण देकर भी मुझे मिला क्या ? प्रेम प्रतिदान नहीं चाहता, यह जानती हूँ पिता, किन्तु बार-बार उसपर आघात करना ही क्या पुरुषका कर्तव्य है ? नारीकी

कोमलताको निर्दयतासे पाँवसे कुचल कर सक्षम नर गौरवके शिखरपर चढेगा ? यही होगा नारीके प्रेमका प्राप्य मूल्य ? बोलिए महाराज रामचन्द्र । पुरुषके आगे परीक्षा देते रहनेमे ही स्त्री-जीवनकी चरम सार्थकता होगी ?

राम : [**करुण कण्ठ**] स्वर्गकी देवी सीता रौरवके पापी रामसे इस प्रश्नका उत्तर नही पा सकती । पूछो विधाताके उस विधानसे, जिसने नारीके हृदयमे अकूल प्रेम भर दिया है । जिसने उसके नयनोमे गंगा-यमुना भर दी है, जिसने उसके शरीरमें फूलोकी मृदुलता भर दी है । [**सीताके पास आकर घुटने टेक देते है**] मै अब महाराज नही हूँ । भाग्यलक्ष्मीने मेरे जीवनके साथ निष्ठुर खेल किया है । मेरा गर्व रो रहा है । राम तुमसे क्षमाकी भीख माँग रहा है सीता । राजा रामको कभी क्षमा मत करना, उसने बहुत बडा अपराध किया है, पर पति रामको एक बार क्षमा कर दो देवि । वह दिन भूल गयीं सीता जब राम राजा नही था, सीता महारानी नही थी ? प्रणयके वह संवेगमय दिन····

सीता : कुछ नही भूली हूँ स्वामी ? यही तो सीताकी निधि है । नारीके अंचलमें यही कुछ स्मृतियाँ तो शेष रह जाती है । अपमान और उपेक्षाके अन्धकारमें वही कुछ क्षण तो स्फटिक-मणिकी भाँति चमककर उसे मरण-पथपर सान्त्वना देते है । उठो स्वामी, मुझे दुर्बल न बनाओ । वह कुछ क्षण मुझे याद है । आशीर्वाद दो कि मै उस क्षणको भी न भूलूँ जब लंकामें मेरी अग्नि-परीक्षा तुमने ली थी । जब प्रजा

के कहनेपर मुझे अयोध्यासे निर्वासित किया था। सीताका सत्य इन कुछ क्षणोंके बिना अधूरा रहेगा देवता! मैं तुम्हें क्षमा करूँगी? [**रामको उठाकर**] दासी अपने स्वामी-को क्षमा करेगी? शिष्या गुरुको क्षमा करेगी? भक्त भगवान्को क्षमा करेगा? कहते क्या हो महाराज? माँ धरती! सीताकी लज्जा समेट लो माँ!

राम : [**प्रसन्नतासे सीताका हाथ अपने वक्षपर धरकर**] बस सीता, अब और कुछ मत कहो। अब कुछ मत कहो मैथिली! रामको तुम्हारी क्षमा मिल गई। अनुकम्पा मत दो किन्तु घृणा मत करो देवी!

[**आँधी-तूफ़ानका वेग बढ़ जाता है। नेपथ्यमें बिजली रह-रहकर कड़कती है और पृष्ठभाग बिजलीकी चमकसे निरन्तर प्रकाशित होता रहता है। मञ्चपर प्रकाश धीरे-धीरे अन्धकारका रूप लेने लगता है।**]

राम : सत्रह वर्षोंके बाद रामके जीवनमे सौभाग्य हँसा है। आज तो उसे हँस लेने दो! आज तो उसका आनन्द मत छीनो! चलो सीते! लौट चलो अयोध्या!

सीता : [**नेपथ्यकी ओर देखती हुई, हाथ छुड़ाकर**] माँ धरित्री, ले चलो मुझे! अपनी गोदमे बुला लो माँ! सीताका काम समाप्त हो गया। स्वामी, मेरे प्रेमकी धरोहर लव-कुशको सम्हालकर रखना। सीताके कलङ्कका अभिशाप अपने स्नेहके वरदानसे धो देना। माँ····आती हूँ माँ! विदा दो आर्यपुत्र।

[तीव्र गर्जनके साथ बिजली चमकती है और फिर मञ्च पर पूर्ण अन्धकार छा जाता है। सीता जल्दीसे बाहर निकल जाती हैं।]

राम : **[अर्द्धविक्षिप्त]** यह क्या हो रहा है महर्षि ? प्रकृतिका यह उन्माद, प्रलयका यह ताण्डव····क्या शंकरका तीसरा नेत्र जाग उठा है ? ध्वंसका यह अन्धकार····सीता, कहाँ हो तुम ? रामको मार्ग दिखाओ सीते !····सीते····मौन क्यों हो सीते ? जानकी····सीता····सीता ! **[मञ्चपर प्रकाश हो जाता है, हल्का। राम धरतीपर लोट रहे हैं।]** सीता चली गई ? मेरी सीता चली गई ? रामको असहाय ही छोड़ गई ? रामके हृदयका स्पन्दन बन्द क्यों नहीं हो जाता ? सीते····सीते····**[पागलोंकी भाँति दौड़ते हैं उठकर, एक वृक्षके तनेसे ठोकर लगती है, वहीं गिर पड़ते हैं।]** तुम चली गईं सीते !····जाओ, अखण्ड शान्तिके पवित्र लोकमे तुम्हारा स्वागत होगा। रामको नरककी यंत्रणामें तड़पने दो। प्रायश्चित्तकी आगमे उसका तन-वदन झुलसने दो। जाओ भूमिजा ! राम तुम्हें प्रणाम करता है।

[नेपथ्यमें तीव्र करुण-रागिनी। राम दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करना चाहते हैं किन्तु कर नहीं पाते। मूर्छित हो जाते हैं। वाल्मीकि पास आकर सम्हालते हैं। पर्दा मिलता है।]